# यजुर्वेद संदेश

ओ३म्

डॉ. सोमदेव शास्त्री

ओम सिरीज बी - २

लेखक

## डा. सोमदेव शास्त्री

## द्वारा

## लिखित वैदिक साहित्य

१. वैदिक - सन्देश
२. गीता - सन्देश
३. उपनिषद् - सन्देश
४. रामायण - सन्देश
५. महाभारत - सन्देश
६. स्मृति - सन्देश
७. दर्शनों का तत्त्वज्ञान
८. सत्यार्थ - सन्देश
९. संस्कार - सन्देश
१०. ऋग्वेदादि - सन्देश
११. यजुर्वेद - सन्देश
१२. सरल संस्कृत शिक्षक
१३. स्वर सिद्धान्त
१४. पूना प्रवचन सार
१५. पं. श्याम जी कृष्ण वर्मा
१६. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम

# यजुर्वेद - सन्देश

✻ लेखक ✻
डॉ. सोमदेव शास्त्री

✻ प्रकाशक ✻
ओमप्रकाश मस्करा
अध्यक्ष :
वेद प्रचार ट्रस्ट - चारु इन्टरप्राइजेस
१० बी. निलाम्बर बिल्डिंग,
२८बी शेक्सपियर सरणी,
कोलकाता - ७०० ०१७.

प्रथम संस्करण
३००० प्रति

सन् - २००३

मूल्य : १५ रुपये

१) **प्रकाशक**

**ओमप्रकाशक मस्करा**

अध्यक्ष : वेद प्रचार ट्रस्ट - चारु इन्टरप्राइजेस

१० बी, नीलाम्बर बिल्डिंग,

२८ बी. शेक्सपियर सरणी,

कोलकता - ७०००१७

दूरभाष :- ०३३-२२८०१२१

२) **प्राप्ति स्थान**

सोमदेव शास्त्री

३०९ मिल्टन अपार्टमेंन्टस्

जुहू कोलिवाड़ा, मुम्बई -४९

दूरभाष :- ०२२-२६६० ६९०८

३) **आर्य समाज सान्ताक्रुज़**

लिंकिंग रोड़, सान्ताक्रुज़ (प.)

मुम्बई - ५४

**मूल्य १५ रुपये**

**१०० पुस्तक प्रचारार्थ मूल्य १२०० रु.**

**मुद्रक :**

१४० निराला मुद्रक साने गुरुजी मार्ग

मुम्बई - ११

# "प्रकाशकीय वक्तव्य"

वेदों में इस जीवन को सफल करने और अगले जन्म को भी सफल करने की विद्या है। सुख का मूल आधार धर्म है और धर्म का मूल आधार वेद हैं **(वेदोऽखिलो धर्ममूलम्)** वेदों में मनुष्यों के लिये सभी विद्याएं सूक्ष्म रूप से विद्यमान हैं। ऋषियों ने वेदों के ज्ञान भण्डार को अपने शास्त्रों के द्वारा प्रचारित और प्रसारित किया है। वेदान्त दर्शन में परमात्मा के स्वरूप को तथा योगदर्शन के द्वारा परमात्मा को प्राप्त करने का तरीका (माध्यम) बतलाया गया है। इसी तरह अणु-परमाणु का ज्ञान वैशेषिक दर्शन में, प्रकृति-पुरुष (जड़ और चेतन) का विवेचन सांख्य दर्शन में विस्तार से किया है। शरीर से सम्बंधित ज्ञान का वर्णन आयुर्वेद में विस्तार से किया है। ऋषियों ने अपने शास्त्रों की प्रामाणिकता के लिये वेदों के प्रमाण भी शास्त्रों में उद्धृत किये हैं। उपनिषद्, गीता, रामायण, महाभारतादि ग्रन्थों में भी वेदों की प्रशंसा की गयी है। मनुस्मृति में तो यहां तक लिखा हुआ है कि जिसने वेद नहीं पढ़े हैं वह गृहस्थ में प्रवेश करने के योग्य नहीं है। अर्थात् सभी शास्त्रों में वेदों का महत्व बतलाया गया है। जब से संसार बना है तभी से वेद बने हैं ऐसी सभी की मान्यता है। इसलिये **प्रो. मैक्समूलर ने लिखा है कि "ऋग्वेद संसार" के पुस्तकालय में सब से पुराना ग्रन्थ है।**

महाभारत के युद्ध के कारण इस देश की बहुत हानि हुई, वेदों का पठन-पाठन भी धीरे-धीरे लुप्त हो गया। वेदमन्त्रों के अनर्थ किये गये, महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों का संस्कृत और हिन्दी में भाष्य करके सभी मनुष्यों को वेदों के ज्ञान से लाभान्वित किया। महर्षि दयानन्द सरस्वती के यजुर्वेद भाष्य के आधार पर मेरे विशेष निवेदन पर डा. सोमदेव शास्त्री ने सरल भाषा में संक्षेप से **"यजुर्वेद-सन्देश"** नामक इस लघु पुस्तिका की रचना की। जिससे वेद प्रेमी जन यजुर्वेद में विद्यमान ज्ञान भण्डार को संक्षेप से जान सकें, इसी निमित्त यह प्रयास उन्होंने किया है।

डा. सोमदेव शास्त्री ने सरल भाषा में गीता-उपनिषद्-दर्शन-रामायण-महाभारत-मनुस्मृति-संस्कारविधि-सत्यार्थ प्रकाशादि ग्रन्थों पर अनेक पुस्तकें लिखी हैं। मैं वेदों का प्रचार करके घर-घर वेद पहुंचाना चाहता हूँ, इसलिये मैंने श्री शास्त्री जी से वेद पर पुस्तक लिखने का निवेदन किया था, उन्होंने मेरा निवेदन स्वीकार किया और अल्प समय में यह प्रथम पुष्प दे रहे हैं आगे भी यह क्रम चलता रहेगा। इसके लिये मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

**ओमप्रकाश मस्करा**
कोलकाता

# प्राक्कथन

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्रादि चारों वर्णों के क्या कर्तव्य हैं ? इनको आपस में मिलकर प्रेमपूर्वक किस प्रकार रहना चाहिये ? ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ-संन्यास आदि चारों आश्रमों के क्या कर्तव्य हैं ? कौन व्यक्ति किस आश्रम में कब प्रवेश करे ? इसका विवेचन वेदों में है। पृथ्वी-अन्तरिक्ष और द्युलोक इन तीनों लोक लोकान्तरों में कौन-कौन से तत्त्व विद्यमान हैं ? अर्थात् भूगर्भ विद्या, खगोल और ज्योतिष विद्या, भौतिक ज्ञान-विज्ञान, यज्ञ, चिकित्सा, उपासना, व्यापार-राज्य शासन, परिवार, समाज और राष्ट्र की उन्नति इत्यादि विषयों का विवेचन तथा वर्तमान-भूत और भविष्यकाल विषयक समस्त ज्ञान-विज्ञान वेदों में विद्यमान है ऐसा मन्तव्य प्राचीन ऋषि-मुनियों का वेदों के विषय में रहा है।

**चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाः चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।**
**भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति ॥** (मनु. १२-९७)

महाभारत के युद्ध के पश्चात् वेदों के पठन पाठन में शिथिलता आ गयी वेदमन्त्रों के अर्थ संकुचित कर दिये गये। पशुहिंसा जैसे जघन्य कृत्यों का प्रतिपादन वेद मन्त्रों से किया जाने लगा, परमात्मा की महती कृपा से इस युग में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों पर किये जाने वाले सारे आक्षेपों को दूर करके शास्त्रों के प्रमाण देकर स्पष्ट किया कि वेदों में समस्त ज्ञान विज्ञान विद्यमान है। उन्होंने वेदों में विद्यमान ज्ञान-विज्ञान का विवेचन अपने ग्रन्थ **"ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका"** में किया तथा ऋग्वेद और यजुर्वेद का संस्कृत और हिन्दी में भाष्य किया।

यजुर्वेद में विद्यमान ज्ञान-विज्ञान की हिन्दी भाषा के माध्यम से संक्षेप में जानकारी हो सके, इस दृष्टि से वेदप्रचार ट्रस्ट कलकत्ता के अध्यक्ष माननीय **श्री ओमप्रकाश जी मस्करा** ने एक लघुपुस्तिका लिखने का आग्रह किया, जिसके परिणाम स्वरूप यह पुस्तक आपके हाथों में है। समय बहुत ही कम था, कार्य की अत्यधिक व्यस्तता रही, स्वास्थ्य भी साथ नहीं देता फिर भी **श्री मस्कराजी** के आग्रह के परिणामस्वरूप यह कार्य हो सका है। **श्री मस्कराजी** वेदप्रचार ट्रस्ट के माध्यम से वेदों को घर-घर तक पहुंचाने के लिये, साहित्य के प्रचार द्वारा, शिविरों और सम्मेलनों का आयोजन करके, विद्वानों के सत्संग-प्रवचन और वैदिक साहित्य के प्रकाशन के द्वारा **श्री मस्कराजी** वेद प्रचार का कार्य कर रहे हैं। इस पुस्तक के प्रकाशन की सारी व्यवस्था उन्होंने ट्रस्ट की ओर से की इससे पहले भी उपनिषद्-सन्देश को प्रकाशित करके वितरित किया। इसके लिये मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। शीघ्रता में लिखने और प्रकाशित करने के कारण पुस्तक में यदि कोई न्यूनता दिखलाई दे तो विज्ञ पाठकों से निवेदन है कि उससे अवगत कराने की कृपा करें, जिससे अगले संस्करण में उसे ठीक किया जा सके।

श्रावण पूर्णिमा - २०६०
मुम्बई -

विदुषामनुचर
**सोमदेव शास्त्री**

# विषय सूची

# "यजुर्वेद - सन्देश"

**वेद शब्द का अर्थ :-** वेद शब्द विद् (ज्ञाने) विद् सत्तायाम् विद्-लाभे और विद्-विचारणे, इन चार धातुओं से बनता हैं जिसका तात्पर्य है जिन ग्रन्थों में ज्ञान विज्ञान (सभी सत्य विद्याएं) विद्यमान हैं। जिन ग्रन्थों के द्वारा सभी सत्य विद्याओं का ज्ञान होता है, जिन ग्रन्थों के द्वारा ज्ञान विज्ञान विषयक लाभ प्राप्त होता है तथा जिन ग्रन्थों में विविध विषयों का विचार चिन्तन या विवेचन किया गया है वे ग्रन्थ वेद कहलाते हैं। इसलिये महर्षि मनु ने लिखा है कि वेद समस्त ज्ञान विज्ञान के भण्डार हैं[1] वेद ही धर्म अर्थात् कर्तव्य-अकर्तव्य का बोध कराने वाले ग्रन्थ हैं[2] वेद के विषय में आगे भी लिखा है कि चारों वर्ण, चारों आश्रम, पृथिवी-अन्तरिक्ष और द्युलोक आदि तीनों लोकों तथा भूत भविष्य और वर्तमान में होने वाले पदार्थों को वेदों से ही जाना जाता है[3]। महर्षि मनु के इन शब्दों से स्पष्ट होता है कि वेदो से समस्त ज्ञान-विज्ञान, कर्तव्य-अकर्तव्य, धर्म अधर्मादि का बोध होता है।

**अनिवार्यता :-** परमात्मा संसार को बनाने वाला, पालन करने वाला और प्रलय करने वाला है। ऐसा उल्लेख महर्षि व्यास ने वेदान्त दर्शन में किया है[4]। सृष्टि (संसार) का निर्माण करके संसार में मनुष्य को किस प्रकार रहना चाहिये, सांसारिक (भौतिक) पदार्थों का किस प्रकार उपयोग करके उनसे लाभ उठाना चाहिए, इस विषय का ज्ञान भी परमेश्वर ने सृष्टि के प्रारम्भ में 'वेदों' के रूप में दियो[5]। ऐसा उल्लेख वेदान्त दर्शन में किया गया है। जिस प्रकार रेडियो, टी.वी. फ्रिज आदि बनाने वाली कम्पनियाँ इन वस्तुओं को बनाने के साथ-साथ इनका कैसे उपयोग करना, इनकी देख-रेख सुरक्षा आदि किस प्रकार करनी चाहिये, इस विषय की एक छोटी पुस्तिका (Book Let) भी बनाती है। जिससे इन पदार्थों का यथोचित उपयोग करके मनुष्य लाभ उठा सके। इसलिये बाजार में विक्रेता (बेचनेवाला) टी. वी., फ्रिजादि के साथ छोटीसी पुस्तिका भी क्रेता (खरीदनेवाले) को देता है। जब एक छोटे से सामान के साथ उसके विषय में पुस्तिका के माध्यम से ज्ञान भी दिया जाता है तो संसार के बनानेवाले परमात्मा ने भी संसार में कैसे रहना चाहिये ? सांसारिक पदार्थों का उपयोग किस प्रकार करना चाहिये और उनसे लाभ कैसे उठाना चाहिये इत्यादि विषयों का ज्ञान भी दिया है जो 'वेदों' के नाम से प्रसिद्ध है। इसीलिये वेदान्त दर्शन के रचयिता ने लिखा कि संसार को बनानेवाला और सांसारिक पदार्थों का ज्ञान देने वाला परमात्मा भी एक ही है[6] अलग-अलग नहीं। मनुष्य आँखों से देख सके इसके लिये परमेश्वर ने सृष्टि के प्रारम्भ में सूर्य का निर्माण किया, जिसके प्रकाश से वह आँखों से देखकर चलने में समर्थ हुआ। आँखों के लिये जैसे सूर्य का निर्माण किया, उसी प्रकार आन्तरिक (नेत्र) बुद्धि (मस्तिष्क) के उन्नति के लिये, उसकी सक्रियता के लिये परमेश्वर ने बुद्धि के (वेद

ज्ञानरूपी) सूर्य को प्रकाशित किया। वेदों के ज्ञान रूपी प्रकाश के द्वारा मनुष्य अपनी बुद्धि से सत्य-असत्य, कर्तव्य-अकर्तव्य को जानकर जीवन सुखी बना सकता है।

वेद उतने ही प्राचीन हैं, जितना प्राचीन सूर्य, मनुष्य और मानवीय सृष्टि है। इसलिये वेद को सनातन चक्षु कहा जाता है।

**वेदों का महत्व :-** भारतीय परम्परा में वेदों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। जो व्यक्ति धर्म को जानना चाहता है कि क्या धर्म है, क्या अधर्म है, कौनसा कर्म शुभ है या अशुभ है ? यह जानने वालों के लिये सर्वोपरि प्रमाण वेद ही हैं[८]।

इसलिये वेद को धर्म का आदि मूल (कारण) कहा गया है[९]। इतना ही नहीं वेदों की महत्ता का वर्णन करते हुए यहाँ तक लिख दिया गया है कि जो व्यक्ति वेदों की प्रामाणिकता को स्वीकार नहीं करता है वह नास्तिक है[१०]। वेदों का विद्वान् ही राज्य की शासन व्यवस्था, सेना का संचालन तथा न्याय की व्यवस्था करने में सफल हो सकता है ! अर्थात् राजा, सेनापति या न्यायाधीश आदि वेदों के विद्वान् ही बन सकते हैं[११]। इतना ही नहीं मनु ने यहाँ तक लिख दिया कि जिस व्यक्ति (स्त्री या पुरुष) ने कम से कम एक वेद भी न पढ़ा हो वह गृहस्थ में जाने योग्य नहीं है[१२]। अर्थात् उसका विवाह नहीं हो सकता। वेदों के महत्व का वर्णन करते हुए लिखा कि जो व्यक्ति वेदों को न पढ़कर अन्य ग्रन्थों को पढ़ने में परिश्रम करता है वह व्यक्ति जीवितावस्था में ही परिवार सहित शूद्रता को प्राप्त होता है अर्थात् शूद्र हो जाता है[१३]।

**ईश्वरीय ज्ञान वेद :-** वेद किसी व्यक्ति के लिखे हुए ग्रन्थ नहीं हैं यह ईश्वरीय ज्ञान है इसीलिये वेदों को अपौरुषेय कहा जाता है (अर्थात् किसी पुरुष की रचना नहीं है। अपितु ईश्वर रचित हैं इसलिये इन्हें अपौरुषेय कहते हैं। जैसे मनुष्य गुरु से ज्ञान प्राप्त करके ज्ञानी या विद्वान् बनता है। विना पढ़े वह किसी भी भाषा या विषय का ज्ञाता नहीं बन सकता है। मनुष्य गुरु से ज्ञान प्राप्त करता है, गुरु ने अपने गुरु से ज्ञान प्राप्त किया ऐसे जितना-जितना पीछे जायेंगे तो अन्त में प्रश्न उपस्थित होता है कि जब सृष्टि में सर्वप्रथम मनुष्य उत्पन्न हुए तो उनको ज्ञान किसने दिया, उनका गुरु कौन था ? इसका उत्तर देते हुए महर्षि पतंजलि ने लिखा है कि परमात्मा ही आदि गुरु अर्थात् गुरुओं का भी गुरु है[१४]। परमेश्वर ने ही सृष्टि के प्रारम्भ में अग्नि-वायु, आदित्य और अंगिरा इन चार ऋषियों के माध्यम से चारों वेदों का ज्ञान दिया। वेदान्त दर्शन में भी लिखा है कि वेद शास्त्र का ज्ञान देनेवाला ब्रह्म अर्थात् परमात्मा है परमात्मा का वचन होने के कारण वेदों की प्रामाणिकता है[१५]। ऐतरेय ब्राह्मण में भी लिखा है कि परमात्मा ने वेदों को उत्पन्न किया[१६]। महाभारत में लिखा है कि सृष्टि के प्रारम्भ में स्वयम्भू परमात्मा ने दिव्य वेद वाणी को उत्पन्न किया। परमात्मा का ज्ञान होने के कारण न इसका प्रारम्भ हुआ है न इसका अन्त (नाश) होगा अर्थात् वेद नित्य और अनादि हैं[१७]। जैसे परमात्मा नित्य और अनादि है वैसे ही उसका ज्ञान भी नित्य और अनादि है।

इसमें मनुष्यों के लिये हितकारक सभी कर्मों का विधान है। जिस प्रकार मनुष्य श्वास-प्रश्वास द्वारा वायु को अपने शरीर के अन्दर लेता है और बाहर निकालता है, वैसे ही सृष्टि के प्रारम्भ में परमेश्वर अपने वेद ज्ञान को ऋषियों के माध्यम से देता है और प्रलयावस्था में अपने अन्दर वापस ले लेता है ऐसा ब्राह्मण ग्रंथों में लिखकर स्पष्ट किया गया है[१८]। इस प्रकार वेदों के ईश्वरीय ज्ञान। (अपौरुषेय) होने के विषय में विविध शास्त्रों में विस्तार से लिखा है जिससे स्पष्ट होता है कि वेद अपौरुषेय (ईश्वरीय ज्ञान) हैं।

**ईश्वरीय (अपौरुषेय) ज्ञान का वैशिष्ट्य :-** ईश्वरीय ज्ञान में क्या विशेषताएँ होनी चाहियें जिससे स्पष्ट हो जाय कि यह ग्रन्थ ही ईश्वरीय ज्ञान है। क्योंकि कोई वेद को ईश्वर का ज्ञान कहता है तो कोई कुरआन को बतलाता है तो कोई बाईबिल को तो कोई जन्दावस्था को बतलाता है अतः कुछ ऐसी विशेषताएँ होनी चाहियें जो केवल ईश्वरीय ज्ञान में ही स्पष्ट दीखती हैं अन्य में नहीं। जिनके कारण ईश्वरीय ज्ञान का निर्णय किया जा सके। इस विषय में विद्वानों ने विस्तार से विवेचन किया है[१९]। संक्षेप से कुछ विशेषताएँ अधोलिखित हैं।

१. ईश्वरीय ज्ञान का उपदेश सृष्टि के प्रारम्भ में होना चाहिये यदि संसार बनने पर मनुष्यों की दो चार पीढ़ी व्यतीत होने के बाद परमात्मा ज्ञान देता है तो वह पक्षपाती हो जायेगा, क्योंकि दो चार पीढ़ी के मनुष्यों को तो उसने अपने ज्ञान से वंचित रखा और बाद में उत्पन्न होनेवाले मनुष्यों को अपने (ईश्वरीय) ज्ञान से लाभान्वित किया। परमात्मा पक्षपात रहित है, इसलिये उसने अपना ज्ञान सृष्टि के प्रारम्भ में ही जब मनुष्य उत्पन्न हुए थे तभी उसने ज्ञान दिया। इस विशेषता पर विचार करते हैं तो स्पष्ट होता है कि कुरआन को बने १४०० वर्ष, बाईबिल को बने २००३ वर्ष तथा जन्दावस्था को बने ४००० वर्ष हुए है। भारतीय परम्परा के अनुसार वेद उतने ही पुराने हैं जितना यह संसार है। जो विद्वान् इस मान्यता से सहमत नहीं हैं वे भी एक मत हैं कि वेद संसार के पुस्तकालय में सबसे पुराने ग्रन्थ हैं। मैक्समूलर ने लिखा है Rigveda is oldest book in library of world.

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और श्रीकृष्ण वेदों के विद्वान् थे। उन्हें रामायण और महाभारत में **"वेद वेदांगवित्"** (अर्थात् वेद-वेदांगों के ज्ञाता) लिखा है। श्रीराम ने हनुमान जी को वेदों का महान् ज्ञाता कहा है[२०]। इतना ही नहीं मनुस्मृति में तो यहाँ तक लिखा है कि सृष्टि के प्रारम्भ में वेदों के शब्दों के द्वारा ही सब पदार्थों और प्राणियों के नाम, कर्म और सांसारिक नियमों की रचना की गयी[२१]।

२. परमात्मा अपरिवर्तन शील है। उसके बनाये हुए नियम भी अपरिवर्तनशील हैं। (जैसे हजारों वर्ष पहले अग्नि पर हाथ रखने से हाथ जलता था, आज भी जलता है और आगे भी जलेगा।) इसी प्रकार ज्ञान (ईश्वरीय ज्ञान) भी अपरिवर्तन शील है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता है। मनुष्य अल्पज्ञ है अतः उसके ज्ञान में, उसके ग्रन्थों में परिवर्तन-परिवर्धन और संशोधन होता है। परमात्मा सर्वज्ञ है, अतः

उसके ज्ञान (ईश्वरीय ज्ञान) में परिवर्तन संशोधनादि नहीं होता है। किन्तु बाईबिल का पुराना संस्करण (ओल्ड टेस्टामेन्ट) था उसका संशोधित रूप नया संस्करण (न्यू टेस्टामेन्ट) के रूप में बना। कुरआन को इलहाम (ईश्वरीय ज्ञान) मानने वालों का भी मत है कि पहले जबूर-फिर तौरेत उसके बाद इंजील और इसमें भी संशोधन और कुछ परिवर्तन करके 'कुरआन' की रचना हुई। इस परीक्षा की कसौटी पर वेद ही ईश्वरीय ज्ञान के रूप में प्रमाणित होता है। क्योंकि इसमें कोई परिवर्तन आज तक नहीं हुआ। एक शब्द या मात्रा न्यूनाधिक या आगे पीछे नहीं हुए हैं। वेदों को यथावत् रखने के लिये पदपाठ-क्रमपाठ-जटापाठादि की रचना की गयी है।

३. ईश्वरीय ज्ञान की तीसरी विशेषता है कि उसमें किसी व्यक्ति-स्थान, देश विशेष या राजा महाराजाओं का वर्णन नहीं होता है। राजा हो जाने के बाद ही उसका इतिहास लिखा जाता है। ईश्वरीय ज्ञान तो सबसे पहले दिया जाता है। जिन ग्रन्थों में राजा-महाराजाओं का इतिहास या देश विशेष का भौगोलिक वर्णन है जैसे बाईबिल में पैलेस्टाइन के अनेक स्थानों का तथा वहाँ के यहूदी राजाओं का वर्णन है। इसी प्रकार कुरआन में अरब देश और मोहम्मद साहब का वर्णन है। जब कि वेदों में किसी स्थान या राजा का वर्णन नहीं है अतः ईश्वरीय ज्ञान की कसौटी में वेद ही प्रमाणित होते हैं।

४. ईश्वरीय ज्ञान में सृष्टि क्रम के विरुद्ध कोई वर्णन नहीं होना चाहिये। जैसे बाईबिल में कुमारी मरियम (बिना किसी पुरुष के संयोग) से ईसा मसीह का उत्पन्न होना, ईसा द्वारा मुर्दों को जीवित कर देना, बिना दवाई के अन्धों की आंखें ठीक कर देना, इसी प्रकार कुरान में लिखा कि पहाड़ बादलों की तरह उड़ते थे, फरिश्ते आसमान में रहते हैं, बहिश्त अर्थात् स्वर्ग में दूध और शहद की नदियाँ बहती हैं आदि।

इसी तरह पुराणों में लिखा है कि अगस्त्य ऋषि ने समुद्र पी लिया, एक राक्षस पृथिवी को चटाई की तरह लपेट कर सिरहाने रखकर सो गया, हनुमान जी ने सूर्य को मुंह में ले लिया, आदि आदि सृष्टि क्रम के विरुद्ध बहुत सी बातें जिन ग्रन्थों में हैं वे ग्रन्थ ईश्वरीय ज्ञान नहीं हो सकते। वेदों में ऐसा सृष्टि क्रम विरुद्ध कोई वर्णन नहीं है अतः वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं।

५. ईश्वरीय ज्ञान में मनुष्यों के कल्याण के लिये विविध ज्ञान-विज्ञान का वर्णन होना चाहिये बुद्धि या तर्क विरुद्ध अथवा अन्ध विश्वास युक्त बातें नहीं होनी चाहियें जैसे सब प्रकार के प्रकाश का मूल कारण सूर्य है उसी प्रकार सभी विद्याओं का मूलकारण वेद है इसलिये वेदों में शरीर विज्ञान, चिकित्सा शास्त्र, भौतिक विज्ञान-राजनीति-समाज शास्त्र, अध्यात्म विज्ञान, औषधि विज्ञान-शास्त्र विद्या, विविध यान, तार विद्या (टेलीफोनं) आदि विविध विषयों का वर्णन है। जब कि यह विवेचन ईश्वरीय ज्ञान के तथा कथित कहलानेवाले ग्रन्थ (बाईबिल-कुरआन आदि) में नहीं हैं। अन्ध विश्वास ग्रस्त होकर ही गैलेलियो-ब्रूनो आदि वैज्ञानिकों

को अन्ध विश्वासियों ने बहुत यातना दी। ईश्वरीय ज्ञान वे ही ग्रन्थ कहलायेंगे जो मनुष्यों में परस्पर घृणा, नफरत, ईर्ष्या-द्वेष नहीं फैलाते हैं। एक दूसरे से कलह, लड़ाई, झगड़ा करने तथा नष्ट करने की प्रेरणा नहीं देते हैं। अपितु सभी के साथ प्रेम से मिलकर रहने की प्रेरणा देते हैं जैसा कि वेदों में लिखा है[२२] कि "मैं मित्र की दृष्टि से सभी को देखूं, सबके साथ मित्र के समान व्यवहार करूं।"

ईश्वरीय ज्ञान कहलाने वाले ग्रन्थों के प्रमाणों से भी स्पष्ट होना चाहिये कि ये ग्रन्थ ईश्वर-प्रदत्त हैं। वेदों में अनेक प्रमाण हैं[२३] जिनसे स्पष्ट होता है कि वेद ईश्वरीय ग्रन्थ हैं। इस प्रकार अनेक विशेषताओं से वेद ईश्वरीय ज्ञान (अपौरुषेय) हैं यह स्पष्ट होता है।

**वेदों का स्वरूप :-** वेद चार हैं जो ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद और अथर्ववेद के नाम से जाने जाते हैं।[२४] उच्चारण की दृष्टि से 'वेद त्रयी' के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। जो मन्त्र पद्य के रूप में हैं उन छन्दोबद्ध मन्त्रों को 'ऋक्' कहते हैं, जिन मन्त्रों का गान किया जाता है उन्हें 'साम' कहते हैं तथा शेष सभी मन्त्र "यजुः" के नाम से जाने जाते हैं।[२५] अथर्ववेद के जो मन्त्र पद्य में हैं वे ऋक् जो पद्य में नहीं है वे 'यजुः' तथा जिनका "गान" किया जाता है जो गीतिका के रूप में हैं वे 'साम' कहलाते हैं। अथर्ववेद में किसी एक प्रकार के मन्त्रों (ऋक्-साम या यजुः) की प्रमुखता न होने के कारण तथा अथर्व वेद में सभी छन्दों का प्रयोग होने के कारण इसे छन्दोवेद कहा गया है-गोपथ ब्राह्मण (१-२९) के अनुसार ऋग्वेद का प्रमुख छन्द गायत्री, यजुर्वेद का त्रिष्टुप् तथा सामवेद का जगती छन्द है किन्तु अथर्ववेद में सभी छन्द हैं (अथर्वणां---सर्वाणि छन्दांसि गो.बा. १-२९) इसलिये छन्दों को वेद कहा गया है। अथर्व वेद को छन्दो वेद या 'छन्दासि' नाम से कहा जाता है। अतः वेद त्रयी कहने से यह भ्रान्ति नहीं होनी चाहिये कि वेद पहले तीन ही थे अथंर्व वेद बाद में बना। अथर्ववेद का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों तीनों वेदों के साथ अनेक स्थलों पर आया अतः वेद चार ही हैं तीन नहीं।[२६]

**वेदों के विषय :-** चारों वेदों में किसका वर्णन किया गया है ? किस वेद में कौनसे विषय का वर्णन है ? इसको स्पष्ट करते हुए ऋषि दयानन्द ने लिखा है[२७] कि "ऋग्वेद में सब पदार्थों के गुणों का प्रकाश किया है--- यजुर्वेद में क्रिया काण्ड का विधान लिखा है --- जैसा ऋग्वेद में गुणों का कथन किया है वैसा ही यजुर्वेद में अनेक विद्याओं का ठीक-ठीक विचार करने से लोगों का नाना प्रकार का सुख मिले --- सामवेद में ज्ञान और आनन्द की उन्नति और अथर्ववेद से सर्व संशयों की निवृत्ति होती हैं।"

इसलिये इनके चार विभाग किये हैं --- जब तक गुण और गुणी का ज्ञान मनुष्य को नहीं होता तब उनमें प्रीति से प्रवृत्ति नहीं हो सकती और इसके बिना शुद्ध क्रियादि के अभाव से मनुष्य को सुख भी नहीं हो सकता, इसलिए वेदों के चार विभाग किये गये। गुण ज्ञान विद्या को जनाने से पहले ऋग्वेद की गणना --- गुण

ज्ञान के अनन्तर क्रिया रूप उपकार --- जनाने के लिये यजुर्वेद --- ज्ञान, कर्म और उपासना की वृद्धि वा फल कितना और कहाँ तक --- इसका विधान सामवेद में लिखा है --- सब विद्याओं की रक्षा और संशय निवृत्ति के लिये अथर्ववेद को चौथा माना है इस तरह चारों वेदों में ज्ञान-कर्म-उपासना तथा संशय निवृत्ति अर्थात् विज्ञान-विशिष्ट ज्ञान का वर्णन है।

**वैदिक वाङ्मय :-** वेदों में सभी विद्याएँ मूल (बीज) रूप में विद्यमान हैं। वेदों में विद्यमान विषयों को स्पष्ट करने के लिये ऋषियों ने पृथक्-पृथक् शास्त्र लिखकर एक एक विषय का विस्तार से विवेचन किया। इस तरह वैदिक वाङ्मय का विशाल साहित्य भण्डार बन गया। वेदों में विद्यमान चिकित्सा शास्त्र का विस्तृत विवेचन के लिये आयुर्वेद, धनुर्विद्या के ज्ञान के लिये धनुर्वेद, गान विद्या की विस्तृत व्याख्या गन्धर्ववेद, भौतिक विज्ञान के लिये अथर्ववेद की रचना ऋषियों ने की, जो उपवेद के नाम से जाने जाते हैं।

वेदों की व्याख्या के लिये वेद की शाखाओं और ब्राह्मण ग्रन्थों की निर्माण हुआ। चारों वेदों की ग्यारह सौ सत्ताईस शाखाएँ थीं, जो इस समय बहुत कम मिलती हैं। वेदों के व्याख्यान 'ब्राह्मण ग्रन्थ' भी प्रसिद्ध हैं, जिनमें वेद मन्त्रो के शब्दों की व्याख्या तथा यज्ञ से सम्बन्धित विविध विषयों का गहन विवेचन किया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों के भाग आरण्यक और उपनिषद् ग्रन्थों का निर्माण करके ऋषियों ने आरण्यकवासियों (वानप्रस्थियों और संन्यासियों) के कर्तव्य-जीवनचर्या-श्रेयमार्ग एवं आध्यात्मिक विषयों का सुन्दर एवं हृदय ग्राही वर्णन किया है।

चारों वर्ण और चारों आश्रमों के कर्तव्यों का, राजा का प्रजा के साथ व्यवहार, राजा-राजकर्मचारी और प्रजा के पारस्परिक सम्बन्धों का तथा उनके आचार विचारादि का वर्णन स्मृति ग्रन्थों में विद्यमान हैं। स्मृतिग्रन्थों में २८ स्मृतियों मनुस्मृति सर्वाधिक प्रसिद्ध और प्रचलित है। आधुनिक विद्वानों ने मनु को संविधान का प्रथम निर्माता कहकर मनु के प्रति श्रद्धा प्रकट की है।

**वेदांग :-** वेदों को पढ़ाने और समझने के लिये वेदांग और उपांगों की रचना हुई। वेदांग ६ हैं, वेद मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण के लिये **"वर्णोच्चारण शिक्षा"** शब्द ज्ञान के लिये **"व्याकरण"** वेद मन्त्रों के शब्दों के अर्थ ज्ञान करने के लिये, शब्दों के अर्थ (निर्वचन) करने के लिये तथा देवता ज्ञान के लिये **"निरुक्त"** की रचना की गयी तथा वेद मन्त्रों के अक्षर मात्रा-गद्य-पद्यादि के ज्ञान के लिये **"छन्द शास्त्र"** की रचना हुई। पृथ्वी-सूर्य-चन्द्र आदि नक्षत्रों-ग्रह-उपग्रहों का वर्णन वेदों में आता है उनके विषय में तथा खगोल एवं भूगोलादि शास्त्रों का विस्तृत विवेचन "ज्योतिष" शास्त्र में किया। सोलह संस्कार, यज्ञ तथा सोम याग आदि के विषय की जानकारी के लिये **कल्प शास्त्र** की रचना ऋषियों ने की। कल्प के अन्तर्गत श्रौत सूत्र-गृह्य सूत्र-शुल्व सूत्रादि ग्रन्थ आते हैं।

**उपांग (दर्शन शास्त्र) :–** उपांग भी ६ हैं जिन्हें दर्शन शास्त्र भी कहते हैं जो न्याय-वैशेषिक-सांख्य-योग-वेदान्त और मीमांसा नाम से जाने जाते हैं। भौतिक और अभौतिक तत्वों की यथार्थता तथा उनकी यथार्थता किन (प्रमाणों) के द्वारा जानी जाती है इसका वर्णन न्याय में है। पदार्थ कौन-कौन से हैं ? एक परमाणु, दूसरे परमाणु से किस विशेष धर्म से समान होते हुए भी पृथक् है इसका उल्लेख वैशेषिक में किया गया है। जड़ (प्रकृति) और चेतन (जीवात्मा और परमात्मा) के द्वारा संसार क्रियाशील है। जड़ और चेतन का विवेचन सांख्य दर्शन में वर्णित है। चेतन तत्व (परमात्मा) को जीवात्मा अर्थात् मनुष्य कैसे प्राप्त कर सकता है ? यह विवेचन योग दर्शन में किया गया है। ब्रह्म का स्वरूप कैसा है ? इसकी विस्तृत व्याख्या ब्रह्मसूत्र अर्थात् वेदान्त दर्शन में की गयी है। धर्म-यज्ञादि कर्मों का विवेचन मीमांसा में विद्यमान है। ये सभी दर्शन शास्त्र अपनी मान्यताओं की प्रामाणिकता को वेद के प्रमाणों के द्वारा प्रमाणित करते हैं, अर्थात् वेदों में विद्यमान संक्षिप्त विषयों की व्याख्या दर्शन शास्त्रकारों ने की है। वेद की प्रामाणिकता को अत्यधिक महत्व देने के कारण इन दर्शनों को आस्तिक दर्शन भी कहते हैं।

**वेद व्याख्या एवं भाष्य :–** वेदों को ईश्वर प्रदत्त पवित्र ज्ञान को ध्यान में रखकर इसकी सुरक्षा के लिये वैदिकों ने पद-क्रम-जटा-शिखादि अष्टविध पाठों की व्यवस्था की। वेदों के प्रत्येक मन्त्र को कंठस्थ करके, सुरक्षित रखा। सुरक्षा की दृष्टि से इतनी कठोर व्यवस्था किसी भी ग्रन्थ की नहीं की गयी। मन्त्रों के पद-पाठ करके उनके अर्थ जानने समझाने के प्रयत्न किये गये। वेदों की शाखाओं का निर्माण करके वेद के गम्भीर शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने के लिये उन शब्दों के स्थान पर सरल एवं प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया। ब्राह्मण ग्रन्थों के द्वारा वेद मन्त्रों के आध्यात्मिक, आधिदैविक-आधियाज्ञिक एवं व्यक्ति-समाज-राष्ट्र परक व्याख्या के संकेत करके वेद की गहनता और व्यापकता की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया। वेदार्थ को स्पष्ट करने में निरुक्त का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। निरुक्त में वेद के शब्दों के निर्वचन करके आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधियाज्ञिक परक अर्थ किये। वेदों के सभी संज्ञा वाचक शब्द क्रियाओं से बने (धातुज) हैं यह स्पष्ट करके वेदार्थ की विविधता-विशिष्टता एवं व्यापकता को स्पष्ट किया गया है।

**मध्यकालीन वेद भाष्यकार :–** मध्यकाल में अनेक वेद भाष्यकार हुए हैं जिन्होंने वेदों का या वेद के कुछ हिस्सों का भाष्य किया। विक्रम संवत् ६८७ में **स्कन्द स्वामी** ने **ऋग्वेद** के प्रथम अष्टक के ४-५ सूक्तों का आधियाज्ञिक प्रक्रिया (कर्मकाण्ड परक) वेद भाष्य किया। स्कन्द स्वामी के समय ही **'उद्गीथ'** हुए हैं। इन्होंने ऋग्वेद के दसवें मंडल के पांचवें सूक्त के चौथे मन्त्र से ८६ सूक्त के ६ मन्त्र तक वेद भाष्य किया। यह भाष्य भी कर्मकाण्ड परक ही है। विक्रम संवत् की १२ वीं शताब्दी में **'वेंकट माधव'** ने ऋग्वेद का आधियाज्ञिक प्रक्रिया के अनुसार

भाष्य किया। विक्रम संवत् की १३ वीं शताब्दी में **आत्मानन्द** ने ऋग्वेद के अस्यवामीय सूक्त (ऋग्वेद के पहले मण्डल के १६४ सूक्त) का आध्यात्मिक प्रक्रियानुसार भाष्य किया। **"आनन्द तीर्थ"** ने (विक्रम संवत् १२५५-१३३५) ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के चालीस सूक्तों का आध्यात्मिक भाष्य किया। **सायणाचार्य** (विक्रम संवत् १३७२-१४४२) ने सम्पूर्ण **ऋग्वेद** का (बाल खिल्य सूक्तों को छोड़कर) अधियाज्ञिक प्रक्रिया परक भाष्य किया। कहीं-कहीं आध्यात्मिक प्रक्रियानुसार अर्थ भी किये हैं।

**उव्वट** (विक्रम संवत् ११००) ने **यजुर्वेद** का भाष्य किया जो कर्मकाण्ड परक भाष्य है। **महीधर** (विक्रम संवत् १६४५) ने भी यजुर्वेद का भाष्य याज्ञिक प्रक्रियानुसार किया। इन दोनों भाष्यकारों ने यजुर्वेद के प्रत्येक मन्त्र को यज्ञ में होने वाली प्रक्रियाओं के साथ जोड़ा। गोमेध, अश्वमेधादि शब्दादि का अनर्थ करके पशु हिंसा जैसा जघन्य कृत्य को यजुर्वेद के मन्त्रों द्वारा प्रतिपादित किया। यजुर्वेद की **तैत्तिरीय शाखा** का भाष्य **भट्ट भास्कर** ने विक्रम संवत् ११०० में किया तथा इसी शाखा का **सायण** ने भी भाष्य किया।

**सामवेद** का भाष्य **भरत स्वामी** ने विक्रम संवत् १३६० के लगभग किया, कर्मकाण्ड परक अर्थों के साथ-साथ कहीं कहीं अध्यात्म परक अर्थ भी किये। **माधव** जो विक्रम की सातवीं शताब्दी में हुए उन्होंने भी सामवेद का भाष्य किया, आधियाज्ञिक प्रक्रिया के अतिरिक्त कुछ मन्त्रों का आध्यात्मिक अर्थ भी किया। अपने भाष्य में ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रमाण भी उद्धृत किये भरत स्वामी और माधव के अतिरिक्त **सायण** ने भी सामवेद का भाष्य किया।

**अथर्ववेद** का मध्यकालीन आचार्यों में केवल **सायण** ने ही भाष्य किया। इसमें भी उन्होंने मन्त्र-तन्त्र-जादू टोना-कृत्या-अभिचार (हिंसा) आदि कृत्यों का वर्णन भाष्य करते हुए किया।

मध्यकालीन सभी आचार्यों ने अपने भाष्यों में मुख्य रूप से याज्ञिक कर्मकाण्ड का वर्णन किया। इसमें भी पशु हिंसा-मांस भक्षण-जादू टोना-मारण-उच्चाटन, अग्नि-इन्द्रादि देवताओं का सशरीर स्वर्ग में निवास, उनका परिवार सहित सुख ऐश्वर्यों को भोगना, यज्ञ की हवि (आहुति) का भक्षण करने के लिये स्वर्ग से अदृष्ट रूप में यज्ञ स्थल पर आना और यजमान को आशीर्वाद देना, मरने के पश्चात् यजमान को स्वर्ग में ले जाना आदि अनेक मिथ्या विचार धारा वेद के नाम पर प्रचलित करने का कार्य किया। जिससे सामान्य जनता वेदों से विमुख हो गयी। वेद केवल कुछ व्यक्ति विशेषों (ब्राह्मणों) के लिये ही हैं जो याज्ञिक कर्म काण्ड कराते हैं, इस प्रकार वेद केवल याज्ञिक कर्मकाण्ड के लिये ही उपयोगी हैं। यह प्रसिद्ध कर दिया गया। इस प्रकार जन सामान्य की वेद से रुचि हट गयी। वेद कथा-वेद प्रवचन, वेद प्रचारादि के स्थान पर भागवत-गीता उपनिषद्, और सत्यनारायण आदि की कथा तथा प्रवचनादि प्रचलित हो गये।

**पाश्चात्य विद्वान् :-** आधुनिक युग (१८ वीं १९ वीं शताब्दी) में वेदों पर भारत के अतिरिक्त पाश्चात्य देशों के विद्वानों ने भी कार्य किया। सन् १८५० में डा. एच. एच. विल्सन ने सायण भाष्य के आधार पर ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद किया। प्रो. मैक्समूलर ने रुद्र-मरुत्-वायु आदि देवताओं के सूक्तों का अंग्रेजी में अनुवाद किया। तथा वेद की संहिताओं के (तथा सायण भाष्य) के सम्पादन का भी परिश्रम साध्य कार्य किया। जर्मन भाषा में ऋग्वेद का पद्यानुवाद जर्मन विद्वान् ग्रासमान ने सन् १८७६-७७ में किया। इसी प्रकार जर्मन विद्वान् ए. लुडविग, एच. ओल्डनवर्ग ने ऋग्वेद का जर्मन अनुवाद किया। आर.टी.एच. ग्रिफिथ ने (सन् १८८९-१८९८) चारों वेदों का अंग्रेजी में पद्यानुवाद किया। लांगल्वा नामक फ्रांसीसी विद्वान् ने फ्रेंच भाषा में ऋग्वेद का अनुवाद किया। डा. कीथ ने तैत्तिरीय संहिता का अंग्रेजी अनुवाद किया। थियोडोर बेन्फे ने (सन् १८४८ में) सामवेद (कौथुम शाखा) का जर्मन अनुवाद किया। अथर्ववेद (शौनक संहिता) का W.H. ---- ने तथा अथर्ववेद (पैप्पलाद शाखा) का ब्लूमफील्ड ने अंग्रेजी अनुवाद करके सन् १९०१ में प्रकाशित किया। इस प्रकार विदेशों में वेदों पर विगत दो वर्षों से बहुत कार्य हुआ।

**महर्षि दयानन्द :-** महर्षि दयानन्द का जन्म गुजरात प्रान्त के टंकारा ग्राम में सन् १८२४ में हुआ। सन् १८४५ में वे योग्याभ्यास और सच्चे शिव की खोज में विरक्त होकर घर छोड़कर चल दिये। पन्द्रह वर्षों तक योग्य गुरु की खोज में घूमते रहे और १८६० में मथुरा में गुरुवर विरजानन्द जी के चरणों में उपस्थित हुए। तीन वर्ष तक गुरुचरणों में रहकर आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन करने के बाद १८६३ में गुरु से विदा ली, गुरुदक्षिणा में अपना जीवन गुरुजी को समर्पित करके वेद, वैदिक मान्यता एवं आर्ष ग्रन्थों के प्रचार-प्रसार में वे लग गये। मुंबई में सन् १८७५ में आर्य समाज की स्थापना की तथा १८८३ में दिवंगत हो गये। बहुत थोड़े समय में वेदों को प्रचार करना, ईश्वर धर्म और वेदों के नाम पर प्रचलित पाखण्ड और अन्धविश्वास का खण्डन, शंका समाधान करना, शास्त्रार्थ करना, स्वार्थी लोगों द्वारा उपस्थित विघ्न और बाधाओं का सहन करना, दिन रात प्रचार यात्रा करना, इतने थोड़े समय में छोटे बड़े ४३ ग्रन्थों को लिखना, अपने आप में एक अद्भुत कार्य उन्होंने किया। स्वार्थी और मूर्ख व्यक्तियों ने उन पर ईंट और पत्थर फेंके, खाने में विष खिलाया, कुटिया में आग लगायी, ध्यान में बैठे हुए को नदी में फेंका आदि दुष्कृत्य किये किन्तु गुरु भक्त एवं प्रभु विश्वासी दयानन्द अपने लक्ष्य से विचलित नहीं हुए और गुरुदक्षिणा में गुरु को दिया हुआ वचन उन्होंने आजीवन निभाया।

विविध ग्रन्थों को लिखने के अतिरिक्त इस भयानक विरोधी वातावरण के रहते हुए भी उन्होंने सम्पूर्ण **यजुर्वेद** तथा **ऋग्वेद** के सातवें मण्डल के ६१ सूक्त के दूसरे मन्त्र तक भाष्य किया। उनके वेद भाष्य में मध्यकालीन आचार्यों के द्वारा किये गये वेद भाष्यों से बहुत भिन्नता है और विशेषताएँ हैं। ऋषि दयानन्द ने अपने वेद भाष्य

में ब्राह्मण ग्रन्थ और निरुक्त में दिये गये शब्दों के निर्वचनों को प्रामाणिक मानकर, उनके अनुसार अपनी व्याख्या पद्धति को अपनाया। जिनका विवेचन अगली पंक्तियों में प्रस्तुत है।

**१) वेद भाष्य की आधार शिला :-** वेद ईश्वरीय ज्ञान है यही महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य की आधार शिला है। जिसके अनुसार "सभी सत्य विद्याएं" वेदों में हैं और जो वेदों में है वहीं संसार में है अर्थात् जो जो पदार्थ संसार में पाये जाते हैं उन सब का वेदों में वर्णन है। जो वेद में है वही संसार में है और जो संसार में है वही वेदों में है, दोनों में परस्पर विरोध नहीं है। यदि संसार में हम आंखों से देखते हैं और कानों से सुनते हैं तो वेद में भी ऐसा ही वर्णन है। वेद (थ्योरी) है संसार (प्रेक्टिकल) है इन दोनों की रचना करने वाला एक ही ईश्वर है। इसलिये ऋषि ने लिखा है कि "सब सत्य विद्या, और जो पदार्थ वेदों से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है"। इसलिये वेदों में सृष्टि क्रम के विरुद्ध कुछ नहीं है। इसी आधार पर ऋषि ने वेदों का भाष्य किया और उसके लिये ब्राह्मण ग्रन्थ तथा निरुक्त के प्रमाणों को उद्धृत करके वेद व्याख्या की प्रामाणिकता को स्पष्ट किया।

**यौगिक प्रक्रिया :-** निरुक्तकार और वैय्याकरणों के अनुसार तीन प्रकार के शब्द होते हैं।

**१. यौगिक :** अर्थात् जिस शब्द में धातु (क्रिया) और प्रत्यय स्पष्ट दीखता है और शब्द का अर्थ धातु (क्रिया) के अनुसार होता है उन्हें यौगिक शब्द कहते हैं जैसे कर्ता (करनेवाला) नेता (ले जानेवाला) पठिता (पढ़नेवाला) यहाँ इन शब्दों का अर्थ धातु अर्थात् क्रिया के अनुसार है।

**२. योगारूढ़ :** जिन शब्दों में धातु प्रत्यय तो होते हैं किन्तु उनका अर्थ किसी विशेष अर्थ में रूढ़ (प्रचलित) हो जाता है, जो केवल उसी पदार्थ को कहता है जैसे "पंकज" (अर्थात् कमल) जो पंक अर्थात कीचड़ से (ज) उत्पन्न होता है उसे पंकज कहते हैं। यह कीचड़ में उत्पन्न होने वाले प्रत्येक पदार्थ के लिये प्रयुक्त होना चाहिये किन्तु यह सभी के लिये प्रयुक्त न होकर केवल 'कमल' के लिये ही 'पंकज' शब्द रूढ़ि रूप में प्रसिद्ध या प्रचलित हो गया। इस प्रकार के शब्द योगरूढ़ि कहलाते हैं।

**३. रूढ़ि :** जिन शब्दों के अर्थ धातु-प्रत्ययादि के अनुसार नहीं होते हैं किसी अर्थ विशेष में रूढ़ि प्रचलित हो जाते हैं उन शब्दों को रूढ़ि कहते हैं जैसे शाला-माला-खट्वा (खाट) इत्यादि।

इस तरह ये तीन प्रकार के शब्द होते हैं। वेदों में यौगिक और योगरूढ़ि शब्द ही प्रयुक्त होते हैं रूढ़ि वाचक शब्द नहीं होता ऐसा निरुक्तकार और वैय्याकरणों का मत है। इसी को आधार मानकर दयानन्द ने अग्नि-इन्द्र-वरुणादि शब्दों के यौगिक प्रक्रियानुसार विविध अर्थ किये। "अग्निः अग्रणीर्भवति" अर्थात् आगे ले जानेवाले को अग्नि कहते हैं। केवल जलने वाले जड़ पदार्थ आग को ही 'अग्नि' वेद में नहीं

कहते हैं। इसलिये वेद में अग्नि के-ईश्वर-राजा, नेता-पुरोहित, पिता, गुरु आदि अनेक अर्थ हो जाते हैं जिसके फल स्वरूप वेद को एक संकीर्ण (संकुचित) क्षेत्र से निकाल कर वेदार्थ का व्यापक क्षेत्र बना दिया। वेद मन्त्रों के रूढ़ि परक अर्थ करके वेदों में इतिहास, वेदों में राजा-वेदों में नदियाँ, वेदों में व्यक्तियों, नगरों के कहानी किस्सों आदि के भयानक घटाटोप से वेदों को निकालकर वेदों के यौगिक और योगरूढ़ अर्थ करके वेदों के कल्याणकारी सन्देश से जन सामान्य को दयानन्द ने अवगत कराया।

**२) इतिहासवाद :-** वेद सृष्टि के प्रारम्भ में दिया हुआ ईश्वरीय ज्ञान है। वेद के शब्दों को ही लेकर मनुष्यों ने अपनी सन्तानों-नगरों और नदियों के नाम रखे हैं। ऐसी शास्त्रीय मान्यता है। वेदों के शब्दों को रूढ़ि (किसी अर्थ विशेष के वाचक) मानने वालों को भ्रान्ति हो गयी है कि वेदों में ये व्यक्तियों और नदियों के नाम है। व्यक्ति पहले होता है और उसका वर्णन बाद में किया जाता है जैसे राम और कृष्ण का वर्णन रामायण और महाभारत में है। इसे इतिहास (इति+ह+आस=ऐसा, निश्चित रूप से था) कहते हैं।

वेद में महावीर-दशरथ-अयोध्या-कण्व-राम आदि शब्दों को देखकर मध्यकालीन आचार्य और उनका अनुसरण करनेवाले सभी विद्वानों ने भ्रमित होकर वेदों में इतिहास और कहानी किस्सों का उल्लेख किया। ऋषि दयानन्द ने ऐतिहासिक प्रतीत होने वाले शब्दों की यौगिक (प्रकृति+प्रत्यय परक) व्याख्या करके इतिहासवाद के भ्रमजाल से मनुष्यों को छुड़ाया और स्पष्ट किया कि वेदों में इतिहास नहीं है। वेदों में आया हुआ 'अत्रि' शब्द किसी ऋषि का वाचक न होकर, जो काम-क्रोध-लोभादि तीन दोषों से रहित है वह अत्रि कहलाता है। (त्रिभिःकाम क्रोध लोभ दोषैः रहिताः (ऋ ५-२२-४)। विश्वामित्र कोई ऋषि नहीं अपितु संसार जिसका मित्र हो उसे विश्वामित्र कहते हैं (विश्वं सर्वं जगत् मित्रं यस्य.... ऋ ३-५३-७)

व्यक्तिवाचक शब्दों के साथ तरप्+तमप् प्रत्ययों (Comparative और Superlative डिग्री) का प्रयोग नहीं हो सकता इसलिये 'कण्वतरः या कण्वतमः' जैसे शब्दों का प्रयोग जो गुणवाचक शब्दों में होता है जैसे ''चतुर-चतुरतरः चतुरतमः'' आदि में तरप् और तमप् प्रत्ययों के प्रयोग से भी स्पष्ट होता है कि वेद में व्यक्तिवाचक (Proper Noun) शब्दों के साथ तरम् तरप् का प्रयोग नहीं होता, इससे स्पष्ट होता है। वेदों में व्यक्ति-स्थान-नदी आदि का वर्णन नहीं है अतः लौकिक इतिहास वेदों में नहीं है यह ऋषि ने स्पष्ट किया। वेदों में भूतकाल की क्रिया भी वर्तमान काल में प्रयुक्त होती है ऐसा पाणिनि ने स्पष्ट किया है। इसलिये भूतकाल की क्रिया देखकर इतिहास का भ्रम नहीं होना चाहिये।

**३) त्रिविध प्रक्रिया :-** निरुक्त में वेदार्थ की आध्यात्मिक-आधिदैविक और आधियाज्ञिक आदि प्रक्रियाओं का वर्णन किया गया है। शरीर आत्मा-मन-बुद्धि-प्राण-इन्द्रियादि तथा परमात्मा विषयक वर्णन आध्यात्मिक प्रक्रिया द्वारा किया

जाता है। सूर्य-अग्नि-वायु-पृथिवी आदि प्राकृतिक तत्वों का विवेचन आधिदैविक प्रक्रिया के द्वारा मन्त्रार्थ किया जाता है।

वेद मन्त्रों का यज्ञ में प्रयुक्त क्रियाओं का वर्णन आधियाज्ञिक प्रक्रिया के द्वारा किया जाता है। मध्यकालीन आचार्यों ने प्रत्येक वेदमन्त्र को यज्ञ की प्रक्रिया के साथ जोड़कर ''आधियाज्ञिक प्रक्रिया'' को ही अपनाया और प्रसिद्ध कर दिया कि वेद यज्ञ के लिये ही प्रवृत्त हुए हैं (वेदाः यज्ञार्थं प्रवृत्ताः)। मानव जीवन के लिये इनका कोई उपयोग नहीं है। तभी तो वेद मन्त्र अनर्थक हैं यह विचार धारा प्रचलित हो गयी।

महर्षि दयानन्द ने यज्ञ के 'खूंटे' से बंधे हुए वेद को निकालकर, वेदों को पारमार्थिक और व्यावहारिक दो प्रकार के अर्थ करके वेदों को मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपयोगी बताकर बहुत बड़ा उपकार किया। व्यक्तिगत-परिवार-समाज-राष्ट्र-चिकित्सा-कृषि-व्यापार-विज्ञान, वर्णाश्रम धर्म, सृष्टि विज्ञानादि विषयों को व्यावहारिक प्रक्रिया (जो प्राचीन आधिदैविक प्रक्रिया) द्वारा वेदों के अर्थ किये तथा शरीर-मन-आत्मा-परमात्मादि का वर्णन (आध्यात्मिक) पारमार्थिक अर्थ वेद मन्त्रों के करके वेदों को सर्वाधिक उपयोगी बनाकर वेदों की ओर संसार का ध्यान आकृष्ट किया। प्रत्येक मन्त्र का उपयोग यज्ञ के लिये ही नहीं है अपितु वेदों में सभी विद्याएँ होने के कारण 'यज्ञ' विषयक वर्णन भी कुछ मन्त्रों में हैं। जिसका उल्लेख महर्षि ने भाष्य करते समय किया है किन्तु आधियाज्ञिक प्रक्रिया को मध्यकालीन आचार्यो के समान नहीं अपनाया। क्योंकि इस प्रक्रिया का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थ और श्रौत सूत्रादि ग्रन्थों में है इसलिये ऋषि ने संकेत दिया कि पीसे हुए अनाज को पुनः पीसना व्यर्थ है अतः आध्यात्मिक और आधिदैविक अर्थ पारमार्थिक और व्यावहारिक प्रक्रिया द्वारा किये हैं। जिस मन्त्र के दोनों ही अर्थ होते हैं, उसकी व्याख्या ऋषि ने श्लेषालंकार मानकर दोनों अर्थों का उल्लेख किया है।

**४) देवता वाद :-** मध्यकालीन आचार्य-वेद मन्त्रों में आये हुए अग्नि-वायु-इन्द्र-सूर्यादि जड़ देवताओं का वर्णन करते हुए लिखते है अग्नि या वायु या सूर्य देवता का जड़ रूप पदार्थों को हम देखते हैं यह उन देवताओं का भौतिक जड़ शरीर है। उनका अभिमानी या अधिष्ठात्री रूप में देवता अर्थात् आत्मा जो असली रूप में है वह स्वर्ग में रहता है। जब यज्ञ में 'अग्नये स्वाहा' यजमान बोलता है तब स्वर्ग में रहने वाला ''अग्नि देवता'' अदृश्य रूप से यज्ञ में आता है और यजमान जो आहुति भौतिक अग्नि में डालता है, उसको अग्नि देवता अदृष्ट रूप से भक्षण-ग्रहण कर लेता और यजमान को आशीर्वाद देता है जिससे वह सुख ऐश्वर्य को प्राप्त करता है और मृत्यु होने पर यजमान को देवता स्वर्ग में ले जाते हैं। स्वर्ग में देवताओं का हमारी तरह परिवार (पत्नी-बच्चे) हैं, वहाँ वे सुख भोग करते हैं आदि-आदि कल्पना करके मध्यकालीन आचार्यों ने देवता और स्वर्ग का चमकीला भवन देवतावाद के नाम पर खड़ा किया था। उसी की प्राप्ति की होड़ में यज्ञों में पशु हिंसा

का ताण्डव नृत्य होने लगा। यज्ञ वेदी गौ अश्वादि पशुओं के रक्त से कलुषित कर दी गयी। जिसके विरोध के फल स्वरूप चार्वाक-बौद्ध और जैन आदि विचारधाराएं प्रारम्भ हो गयीं।

महर्षि दयानन्द ने सप्रमाण देवता शब्द का अर्थ स्पष्ट किया कि जो देता है वह देवता है। माता-पिता-गुरु आदि चेतन देवता हैं तथा पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु आदि जड़ देवता हैं, जो हमारे जीवन में सहायक हैं। यौगिक प्रक्रिया के अनुसार अग्नि-भौतिक अग्नि (आग) ही नहीं अपितु जो अग्रणी है आगे ले जाता है उन्नति की ओर प्रेरित करता है। उसे अग्नि कहते हैं इसलिये पिता-आचार्य-नेता-परमात्मादि को अग्नि कहा जाता है। जहाँ स्तुति या उपासना का प्रसंग है वहाँ अग्नि शब्द का अर्थ परमात्मा है।

इस प्रकार अग्नि-वायु-इन्द्रादि नाम के कोई स्वर्गस्थ देवता नहीं हैं। अपितु ये सब नाम एक ही परमात्मा के हैं। विविध गुणों के कारण उसको विविध नामों से पुकारते हैं। वेदों में बहुदेवतावाद नहीं अपितु एकेश्वरवाद का वर्णन है। ऋषि ने प्रमाण भी प्रस्तुत किया है कि एक परमात्मा को अग्नि-वायु-इन्द्रादि अनेक नामों से विद्वान् पुकारते हैं।

**५) पशु हिंसा :-** मध्यकालीन आचार्यो में यजुर्वेद का भाष्य करते हुए उव्वट और महीधर ने गोमेध-अजामेध-अश्वमेध पुरुषमेधादि शब्दों को लेकर घोड़ा-गाय-बकरी आदि पशुओं की हिंसा का वेद मन्त्रों की व्याख्या करते हुए विस्तार से वर्णन किया है। यजुर्वेद के छठे अध्याय के ७ से २२ मन्त्र तक पशु को बांधना, देवता के लिये उसका वध करना, आहुति देने आदि का भयानक चित्रण किया है साथ में यह भी प्रचलित कर दिया कि यज्ञ के लिये की गयी हिंसा हिंसा नहीं होती हैं। (वैदिकी हिंसा हिसा न भवति)

**गणानां त्वां गणपतिं** यजुर्वेद के इस प्रसिद्ध मन्त्र का बहुत ही भद्दा और अश्लील अर्थ किया जो सभ्य समाज में पढ़ाया सुनाया भी नहीं जा सकता। ऐसा कुकृत्य वेदों के साथ किया गया, जिसे पढ़कर विवेकशील व्यक्ति वेदों से विमुख हो गये। ऋषि दयानन्द ने वेदों के प्रमाण देकर यज्ञों में पशु हिंसा का घोर विरोध किया। यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में (पशून् पाहि) पशुओं की रक्षा करने का उपदेश दिया। गौ को **"अघ्न्या"** अर्थात् हिंसा के अयोग्य है अर्थात् उसकी हिंसा नहीं की जा सकती है। गोमेध का अर्थ गाय की हिंसा नहीं अपितु इन्द्रियों को पवित्र रखना, अश्वमेध घोड़े को मारना नहीं अपितु प्रजा का पालन अश्वमेध है। मृतक शरीर अर्थात् शव का अन्त्येष्टि संस्कार नरमेध है ये अर्थ ऋषि ने किये हैं। वेद के प्रमाण देकर स्पष्ट किया कि जो गाय, घोड़े और पशुओं की हिंसा करे उसको सीसे की गोली से उड़ा (मार) देना चाहिये। वेदों के नाम पर पशु हिंसा के कलंक को समाप्त करने का अद्भुत कार्य ऋषि ने अपने वेद भाष्य द्वारा किया है।

**६) विनियोग :-** जिस मन्त्र को बोलकर जो क्रिया की जाती है, उस क्रिया में उस मन्त्र का प्रयोग-विनियोग कहलाता है जैसे यज्ञ में समिधा डालते (आधान करते) समय ओं समिधाग्निं दुवस्यतघृतैर्बोधयत---मन्त्र बोला जाता है तो समिधाग्निं दुवस्यत---मन्त्र का विनियोग (उपयोग या प्रयोग) समिदाधान में है। इसी प्रकार शन्नो देवी --- मन्त्रोच्चारण करने के पश्चात् आचमन किया जाता है तो शन्नोदेवी --- मन्त्र का विनियोग आचमन में हुआ है। विनियोग मन्त्र के अर्थ के अनुसार होता है। मन्त्र पहले है विनियोग बाद में प्रारम्भ हुआ। आधियाज्ञिक प्रक्रिया में यज्ञ की क्रियाओं के साथ मन्त्रों का विनियोग किया गया। जब प्रत्येक मन्त्र केवल यज्ञ के लिये है ऐसा महीधर उव्वटादि वेद भाष्यकारों ने मान लिया तब प्रत्येक मन्त्र को विनियोग के साथ भी घसीटा गया, जब कि मन्त्र का यज्ञ की क्रिया से कोई लेना देना नहीं फिर भी उसका विनियोग यज्ञ प्रक्रिया में किया गया। मन्त्र को विनियोग के साथ बांध कर मन्त्रों का अर्थ संकुचित ही नहीं अपितु विपरीत भी कर दिया। जैसे महीधर ने यजुर्वेद के पहले अध्याय के पहले मन्त्र इषे त्वोर्जे --- की व्याख्या करते हुए लिखा कि ''इषे त्वा'' बोलकर पलाश की शाखा को काटे ''ऊर्जे त्वा'' बोलकर शाखा को साफ करें। मन्त्र में पलाश या उसकी शाखा का कोई उल्लेख नहीं है। विनियोग कर्ता की अपनी कल्पना है जिसका मन्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं है।

मध्यकालीन आचार्यों ने विनियोग का सम्बन्ध नित्य और अटूट मान लिया, जिससे उनका अर्थ मन्त्र विरुद्ध और अनुपयोगी हुआ। वेदों का विज्ञान केवल यज्ञ एवं विविध संस्कारों के विधि विधान तक ही सिमट (संकुचित हो) कर रह गया।

महर्षि दयानन्द ने शास्त्रों के प्रमाण देकर स्पष्ट किया युक्ति सिद्ध वेदानुकूल तथा मन्त्र के अर्थ का अनुकरण करने वाले ''विनियोग'' ही स्वीकार करने योग्य हैं-जो विनियोग मन्त्रार्थ के विरुद्ध हैं और पहले से चले आ रहे हैं तब भी प्रामाणिक नहीं हैं। मन्त्रार्थ के अनुकूल विनियोग किया जा सकता है यह स्पष्ट करके तथाकथित विनियोगों का दयानन्द ने अन्धानुकरण नहीं किया। अपनी सूक्ष्मेक्षिका से मन्त्रार्थ के अनुकूल विनियोगों का उपयोग करके वेदों के समस्त ज्ञान विज्ञान को अपने भाष्य द्वारा प्रमाणित करके वेदों के यथार्थ स्वरूप को प्रकट किया।

वेद व्याख्या के लिये निम्न लिखित विशेषताओं का वर्णन दयानन्द के वेद भाष्य में मिलता है-

१. वेद के सभी शब्द धातु (क्रिया) से बने हैं अर्थात् शब्द यौगिक और योगारूढ़ हैं धातु के जितने अर्थ होते हैं उतने ही अर्थ उन शब्दों के हो जाते हैं। रूढ़ि शब्द वेद में नहीं है इसलिये वेद में विविध विद्याओं का विस्तृत वर्णन है।

२. वेद में एक ईश्वर की पूजा उपासना का वर्णन है अनेक गुण परमात्मा में हैं इसलिये उसे अग्नि-वायु-इन्द्रादि अनेक नामों से पुकारते हैं। यौगिक प्रक्रिया के अग्नि-वायु आदि शब्दों के जीवात्मा-परमात्मा-अध्यापक, नेता, अग्नि आदि

अनेक अर्थ होते हैं।

३. वेदों में वर्णित देवता अभिमानी या अधिष्ठात्री रूप में स्वर्ग में रहते है। उनका परिवार है, हवि ग्रहण करने यज्ञ में आते हैं आदि मध्यकालीन आचार्यों की यह केवल कल्पना मात्र है जो यथार्थ में नहीं हैं क्योंकि धरती के ऊपर 'स्वर्ग' नाम का कोई लोक नहीं है अभी तक अन्तरिक्ष की खोज में संलग्न वैज्ञानिकों को इसका कोई सकेत नहीं मिला है, अतः सुख विशेष को ही स्वर्ग कहते हैं।

४. वेदों में देश-नदी-नगर या राजा-महाराजाओं का इतिहास नहीं है। वेद में आये शब्दों के रूढ़ि (प्रसिद्ध) अर्थ मानने से मध्यकालीन आचार्यो को भ्रम हुआ। दयानन्द ने स्पष्ट किया कि वेद में रूढ़ि शब्द नहीं अपितु यौगिक और योगारूढ़ हैं। अतः इतिहास नहीं है क्योंकि वेद ज्ञान सृष्टि के प्रारम्भ में प्राप्त हुआ है तथा इतिहास बाद में लिखा जाता है।

५. वेद मन्त्र के अर्थ के अनुकूल मन्त्र का विनियोग होना चाहिये। मन्त्रार्थ विरोधी विनियोग नहीं होना चाहिये।

६. वेदों मे पशु बलि-नर बलि, मांस भक्षण, मदिरापानादि तथा अश्लील चर्चादि निन्दनीय कर्मों का वर्णन नहीं है तथा सृष्टि क्रम के विरुद्ध कोई भी वर्णन वेदों में नहीं है।

७. वेद केवल कर्मकाण्डीय ग्रन्थ नहीं, अपितु विविध ज्ञान विज्ञान के भण्डार हैं, वेदों में ब्रह्मविद्या-सृष्टि विद्या, मुक्ति विषय-चिकित्सा-कृषि व्यापार, गणित विद्या, राजधर्म आदि ३५ विद्याओं का वर्णन है जिसका उल्लेख ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में किया है।

८. वेदों में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ आधियाज्ञिक ही नहीं अपितु आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिक आदि विविध अर्थ होते हैं जिसे ऋषि ने आध्यात्मिक अर्थो को, पारमार्थिक अर्थ तथा शेष अर्थों को व्यावहारिक प्रक्रिया द्वारा स्पष्ट किया है जहाँ दोनों अर्थ हो सकते हैं वहाँ श्लेषालंकार से अर्थ स्पष्ट किये हैं।

इस प्रकार अनेक विशेषताएँ दयानन्द कृत वेद भाष्य में है इसलिये यह लघु पुस्तिका उनके भाष्य के आधार पर लिखी गयी है। जिससे जन सामान्य यजुर्वेद में विद्यमान ज्ञान विज्ञान से लाभ उठा सकें। विस्तृत जानकारी के लिये ऋषि दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य का स्वाध्याय करें।

**टिप्पणी :-**

१. *विदन्ति जानन्ति, विद्यन्ते-भवन्ति, विन्दन्ति-लभन्ते, विन्दते विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः*
   *---- यैर्येषु वा --- ते वेदाः* (ऋग्वेदा वेदोत्पति विषय)
२. *सर्वज्ञानमयो हि सः -----* (मनु.)
३. *वेदोऽखिलो धर्ममूलम्* (मनु. २-६)
४. *चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्। भूतं-भवद् भविष्यच्च सर्व वेदात् प्रसिध्यति ॥* (मनु. १२-९७)
५. *जन्माद्यस्य यतः* (वेदान्त १-१-२)

६. शास्त्र योनित्वात् (वेदान्त १-१-३)
७. तत्तु समन्वतम् (वेदान्त १-१-४)
८. धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः (मनु. २-१३)
९. वेदोऽखिलो धर्ममूलम् (मनु. २-६)
१०. नास्तिको वेदनिन्दक--- (मनु.)
११. सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ (मनु. १०-९७)
१२. वेदानधीत्य वेदो वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥ (मनु.)
१३. योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ (मनु.)
१४. स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् । (योग)
१५. शास्त्र योनित्वात् (वेदान्त.) तद् वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् (वेदा.)
१६. प्रजापति र्वा इमान् वेदासृजत ॥ (एते. ब्रा.)
१७. अनादिनिधना नित्या या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥ (महाभारत)
१८. एवं वा अरे महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः । शत. ब्रा. १४-५-३-१०
१९. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका (महर्षि दयानन्द रचित) तथा भूमिका भास्कर (स्वामी विद्यानन्द सरस्वती)
२०. नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः ।
नासामवेद विदुषः शक्यमेव विभाषितुम् ॥ बा. रामा.किष्कि. ३-२८
२१. सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥ (मनु. १-२१)
२२. मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । (यजु. ३६-१८)
२३. तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे---- (यजु. ३१)
२४. तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः (मुण्ड. १-१-५)
२५. तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था, गीतिषु सामाख्या, शेषे यजु; शब्दः ॥ (मीमांसा २-१-३७)
त्रयी वै विद्या ऋचो यजूंषि सामानि इति । (शत. ब्रा. ४-६-७-१)
२६. तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः (मुण्ड. १-१-५)
चत्वारो वेदाः सांगाः सरहस्या बहुधाभिन्ना---- (महाभाष्य पस्पशाहिनक)
ऋग्वेदं विजानाति-यजुर्वेदं सामवेदमार्थवणं चतुर्थम् (छान्दो. ७-७५२)
यो विद्यात चतुरो वेदान् (पद्. ५-१-५०)
२७. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका-प्रश्नोत्तर विषय

# यजुर्वेद - परिचय

यजुर्वेद में कर्मकाण्ड का वर्णन है, इस विषय में ऋषि दयानन्द ने अपने भाष्य में लिखा है कि "ईश्वर ने ऋग्वेद में गुण और गुणी के विज्ञान के प्रकाश द्वारा सब पदार्थ प्रसिद्ध किये हैं उन मनुष्यों को पदार्थों से जिस - जिस प्रकार यथा योग्य उपकार लेने के लिये क्रिया करनी चाहिए तथा उस क्रिया के जो जो अंग वा साधन हैं सो सो यजुर्वेद में प्रकाशित किये हैं क्योंकि जब तक क्रिया करने का दृढ ज्ञान न हो तब तक उस ज्ञान से श्रेष्ठ सुख कभी नहीं हो सकता - इसलिये जो ईश्वर ने ऋग्वेद के मन्त्रों से सब पदार्थों के गुण गुणी का ज्ञान और यजुर्वेद के मन्त्रों से सब क्रिया करनी प्रसिद्ध की है क्योंकि (ऋक्) और (यजुः) इन शब्दों का अर्थ भी यही है कि जिससे मनुष्य लोग ईश्वर से लेके पृथिवी पर्यन्त पदार्थों के ज्ञान से धार्मिक विद्वानों का संग, सब शिल्प क्रिया सहित विद्याओं की सिद्धि, श्रेष्ठ विद्या, श्रेष्ठ गुण वा विद्या का दान यथायोग्य उक्त विद्या के व्यवहार से सर्वोपकार के अनुकूल द्रव्यादि पदार्थों का खर्च करें इसलिये इसका नाम यजुर्वेद है"।

यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र[1] में ही लिखा है कि सविता देव हम मनुष्यों को श्रेष्ठ कर्म करने के लिये प्रेरित करें। यजुर्वेद के उन्नीसवें अध्याय में भी लिखा है कि हे परमेश्वर ! मुझे कल्याणकारी कर्मों के साथ युक्त कीजिये, जिससे मैं हमेशा श्रेष्ठ कर्म करूं और पाप कर्मों से बचा रहूँ[2]। और यजुर्वेद के अन्त में भी कर्म के विषय में लिखा है कि मनुष्य को सौ वर्ष तक कर्म करते हुए जीवित रहने की इच्छा करनी चाहिये[3]। इस प्रकार यजुर्वेद में आदि - मध्य और अन्त में श्रेष्ठ कर्मों को करने का उपदेश दिया है। यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ कर्म कहा गया है। ऋषि दयानन्द के अनुसार कला कौशल, शिल्प विद्या, उद्योगादि सभी परोपकारी कर्म यज्ञ के अन्तर्गत आ जाते हैं[4] जैसा कि उन्होंने प्रारम्भ में लिखा है -

**अध्याय और मन्त्र :-**

यजुर्वेद में चालीस अध्याय और १९७५ मन्त्र हैं। प्रत्येक अध्याय में मन्त्र संख्या निन्मलिखित है।

| अध्याय | मन्त्र | अध्याय | मन्त्र |
|---|---|---|---|
| १ | ३१ | २१ | ६१ |
| २ | ३४ | २२ | ६४ |
| ३ | ६३ | २३ | ६५ |
| ४ | ३७ | २४ | ४० |
| ५ | ४३ | २५ | ४७ |
| ६ | ३७ | २६ | २६ |
| ७ | ४८ | २७ | ४५ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ८ | ६३ | २८ | ४६ |
| ९ | ४० | २९ | ६० |
| १० | ३४ | ३० | २२ |
| ११ | ८३ | ३१ | २२ |
| १२ | ११७ | ३२ | १६ |
| १३ | ५८ | ३३ | ९७ |
| १४ | ३१ | ३४ | ५८ |
| १५ | ६५ | ३५ | २२ |
| १६ | ६६ | ३६ | २४ |
| १७ | ९९ | ३७ | २१ |
| १८ | ७७ | ३८ | २८ |
| १९ | ९५ | ३९ | १३ |
| २० | ९० | ४० | १७ |
| | | | १९७५ |

**भाष्य एवं भाष्यकार :-**

यजुर्वेद का भाष्य **उव्वट** ने (विक्रम संवत् ११०० में) किया तथा **महीधर** ने (विक्रम संवत् १६४५ मे) किया। दोनों ही भाष्यकारों ने कर्मकाण्ड परक भाष्य किया। जिनमें मन्त्रार्थ के विपरीत भी विनियोग किया गया है। भाष्य में पशु हिंसा तथा अश्लील वर्णन भी है। उनके भाष्यों में यजुर्वेद के प्रथम - द्वितीय अध्याय में दर्श पौर्णमास यज्ञ चतुर्थ अध्याय तक अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है। ३०-३१ अध्याय में पुरुषमेध यज्ञ का बत्तीसवें अध्याय में सर्वमेध यज्ञ तथा पेंतीसवें अध्याय में पितृमेध का वर्णन है। शेष अध्यायों में कर्मकाण्ड को विविध प्रक्रियाओं का वर्णन दोनों भाष्यकारों ने अपने भाष्यों में किया है। महर्षि दयानन्द ने यजुर्वेद का भाष्य किया, उनका भाष्य कर्मकाण्ड परक नहीं है। अपितु उन्होंने पारमार्थिक (अध्यात्म) और व्यावहारिक (आधिदैविक) प्रक्रिया परक अर्थ किये हैं।

मन्त्रार्थ विरोधी विनियोगों को दयानन्द ने स्वीकार नहीं किया। उनके भाष्य में यज्ञ, वर्णाश्रम धर्म, राज - प्रजा, धर्म, गुरू - शिष्य, पति - पत्नी, चिकित्सा - शिल्प विद्या - अध्यात्म और खगोल - भूगोल - कृषि - पशुपालन - वाणिज्य नौविमानादि विद्या, संगीत - योग - ज्योतिष - धनुर्विद्या आदि विविध जीवनोपयोगी विषयों का वर्णन मिलता है।

**टिप्पणी :-**

१. ***देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे*** (यजु. १-१)
२. ***सं मा भद्रेण पृङ्क्त*** (यजु. १९-११)
३. ***कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः ----*** (यजु. ४०-२)
४. ***यजुर्वेद भाष्य की भूमिका***

# अध्याय - १

**विषय विवेचन :-** यजुर्वेद के प्रथम अध्याय में ३१ मन्त्र हैं। प्रथम अध्याय के विषय का उल्लेख करते हुए ऋषि ने लिखा है कि "ईश्वर ने इस अध्याय में शुद्ध कर्म के अनुष्ठान, दोष, शत्रुओं की निवृत्ति, यज्ञक्रिया के फल को जानने, अच्छी प्रकार पुरुषार्थ करने, विद्या के विस्तार करने, धर्म के अनुकूल प्रजा पालने, धर्म के अनुष्ठान में निर्भयता से स्थित होने, सबके साथ मित्रता से वर्तने, वेदों से सब विद्याओं का ग्रहण करने और शुद्धि तथा परोपकार के लिये प्रयत्न करने को आज्ञा दी है"।

**यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म :-** प्रथम मन्त्र का भाष्य करते हुए ऋषि ने लिखा है कि "प्रथम मन्त्र में उत्तम-उत्तम कामों की सिद्धि के लिये मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये इस बात का प्रकाश किया है"। इस मन्त्र में परमेश्वर को सविता देव के रूप में सम्बोधित किया गया है, हे संसार के बनानेवाले परमात्म देव ! हमें (श्रेष्ठतमाय-कर्मणे) जीवन में सर्वश्रेष्ठ कर्म करने की प्रेरणा दीजिये। (इषे ऊर्जे) इषे अर्थात् अन्न आदि उत्तम पदार्थों की प्राप्ति के लिये ऊर्जा अर्थात् पराक्रम शक्ति-बलादि की प्राप्ति के लिये हम आपको स्मरण करते हैं, पुकारते हैं। इन्द्राय अर्थात् परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिये प्रजा अर्थात् हमारी सन्तान (अयक्ष्मा अनमीवा) राजयक्ष्मा तपेदिक आदि रोगों से रहित हों। (अधशंस + स्तेन:) पापी और चोर व्यक्तियों से हम लोग दूर रहें ऐसी कृपा कीजिये। अर्थात् हमारा जीवन ऐश्वर्यशाली हो, इसके लिये आवश्यक है कि हमारे जीवन में शक्ति हो, सभी पदार्थ उपलब्ध हों, सन्तान स्वस्थ हो, हम पापी और चोरों से दूर रहें। यजमान अर्थात् यज्ञ करनेवाले व्यक्ति के पशु सुरक्षित रहें, परमात्मा उनके पशुओं की रक्षा करें क्योंकि गायादि पशु अघ्न्या अर्थात् वध के योग्य नहीं हैं इनका वध कभी नहीं करना चाहिये। इस मन्त्र में यह उपदेश दिया गया है कि हमें गोवध नहीं अपितु गोरक्षा करनी चाहिये। दूसरे मन्त्र में उपदेश दिया है कि यज्ञ वायु शुद्धि का महत्वपूर्ण साधन है। जो वायुमण्डल को शुद्ध करता है, जिससे सुख प्राप्त होता है यज्ञ करनेवाले यजमान सुरक्षित रहें। इतना ही नहीं आगे यज्ञ की महत्ता का वर्णन करते हुए लिखा है यज्ञ संसार को धारण करने वाला है। शुद्धिकारक और सुख देनेवाला श्रेष्ठ कर्म है। यज्ञ की विशेषताओं का वर्णन करने के बाद अगले मन्त्र में लिखा है कि हे परमेश्वर ! यज्ञ विषयक ज्ञान तथा हवियोग्य द्रव्य की रक्षा कीजिये।

**परमात्मा के गुण :-** परमेश्वर सत्य-न्याय-धर्मादि व्रतों का स्वामी है उससे प्रार्थना करता व्यक्ति कहता है कि व्रतों के स्वामी परमेश्वर ! मैं सत्य को जानने-बोलने और आचरण करने का व्रत लेता हूँ प्रतिज्ञा करता हूँ। मुझे असत्य से छुड़ाकर सत्य की ओर चलने की शक्ति-सामर्थ्य प्रदान कीजिये। सत्य-धर्म - न्याय पर चलने की प्रेरणा या सामर्थ्य कौन देता है ? इसका उपदेश प्रश्नोत्तर के रूप

में उल्लेख करते हुए अगले मन्त्र में स्पष्ट किया है कि वह परमात्मा ही हमें सत्य, धर्म, यज्ञ, न्यायादि सत्कर्मों को करने के लिये प्रेरणा देता है, सत्कर्मो में लगाता है[६]। यज्ञादि सत्कर्म करनेवाले व्यक्तियों के मार्ग में दुर्जन बहुत सी बाधाएं डालते रहते हैं। इसलिये कुपथ गामी व्यक्ति से सज्जन व्यक्ति को सदा दूर रहना चाहिये और अपने दृढ़ निश्चय और कठोर परिश्रम द्वारा दुष्ट स्वभाववाले व्यक्तियों को दूर रखना चाहिये जिससे श्रेष्ठ जन पथ भ्रष्ट न हो सकें[७]। परमात्मा हमारे दोषों को नष्ट करनेवाला और जगत् की रक्षा करने वाला है इसलिये हम परमेश्वर की उपासना करते हैं। यह सन्देश भी दिया है[८]।

**यज्ञ की विशेषता :-** ऋत्विजों को यज्ञ कर्म का कभी त्याग नहीं करना चाहिये यह सन्देश भी वेद में दिया है[९]। यज्ञ के द्वारा प्राणियों को सुख मिलता है, मनुष्य का दुःख दारिद्र्य यज्ञ से नष्ट हो जाते हैं, यज्ञ से श्रेष्ठ पदार्थों की रक्षा होती है, जिस घर में यज्ञ होता है उस घर में रहनेवाले मनुष्यों को सुख एवं सद्गुण प्राप्त होते हैं[१०]। यज्ञ से जल, वायु तथा सोमलतादि विविध औषधियां शुद्ध-पवित्र होती हैं[११]। यज्ञ की अनेक विशेषताओं का अगले मन्त्रों में विस्तार से वर्णन किया है। यज्ञ मधुर वाणी से युक्त है क्योंकि वेद मन्त्रोच्चारण करते हुए यज्ञ किया जाता है, यज्ञ के करने से समय पर आवश्यकतानुसार वर्षा होती है जिससे अन्न प्राप्त होता है[१२]। यज्ञ से ही रोगकीटाणुओं के नष्ट होने से शारीरिक बल-शक्ति अर्थात् ऊर्जा प्राप्त होती है[१३]। यज्ञ की अग्नि देवयज्ञ अर्थात् अग्निहोत्र को धारण करने वाली है अग्नि के बिना हवन नहीं हो सकता है। अग्नि पूरी तरह दृढ़ है। यह अग्रणी अर्थात् आगे ले जानेवाली है अर्थात् पदार्थों को सूक्ष्म करके वायुमण्डल में सर्वत्र फैला देती है। यह धृष्टिःअर्थात् शत्रु रूपी रोग कीटाणुओं को नष्ट कर देती हैं[१४]। इस प्रकार के विषय में विस्तार से प्रथम अध्याय के अनेक मन्त्रों में वर्णन किया गया है।

**अग्नि का अर्थ परमात्मा :-** अग्नि शब्द भौतिक अग्नि के अतिरिक्त परमात्मा के लिये इस मन्त्र में प्रयुक्त हुआ है। परमात्मा भी अग्नि इसलिये है कि वह अग्रणी अर्थात् उपासक को आगे ले जाने वाला, उन्नति की ओर अन्तः प्रेरणा देनेवाला है। हे प्रभो ! आप धृष्टि अर्थात् निर्भय हों[१५], हमें भी निर्भय-भयरहित बनाओ, आमादम् जैसे अग्नि-आम अर्थात् अपक्व (कच्चे) पदार्थों का भक्षण करती है अर्थात् पकाती है। पेट में जठराग्नि ठीक हो तो शरीर में आम बनता नहीं है यदि बन गया है तो उस आम (कच्चे) पदार्थ के जठराग्नि पका देती है। आम (आमवात गठियादि रोग) नष्ट हो जाते हैं। वैसे ही परमात्मा उपासना करनेवाले के दुर्गुण दुर्व्यसनादि (आम अर्थात्) दोषों को अद् (भक्षण) अर्थात् नष्ट कर देता है।

**परमात्मा और यज्ञ :-** परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए मन्त्र ३० में कहा है[१६] कि हे परमेश्वर ! आप सभी पदार्थों को उत्पन्न करके आप सब पदार्थों में (विष्णो) व्यापक हो। यजुषे यजुषे अर्थात् यजुर्वेद के प्रत्येक मन्त्र के तात्पर्य को

जानने समझने के लिये मैं आपको ज्ञानरूपी नेत्र से देख रहा हूँ। अर्थात् परमात्मा के व्यापक स्वरूप और सृष्टि निर्माता रूपी गुणों का यजुर्वेद के मन्त्रों का स्वाध्याय करके जाना जा सकता है। इसलिये यजुर्वेद का स्वाध्याय करना चाहिये। इस मन्त्र में अग्नि शब्द का अर्थ भौतिक अग्नि अर्थ करते हुए ऋषि ने यज्ञ की महत्ता का वर्णन करते हुए लिखा कि यजुर्वेद के मन्त्रों से यज्ञ की विशेषताओं का ज्ञान हो सकता है। उस यज्ञ का यथार्थ स्वरूप सुख पूर्वक प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा देखा जा सकता है, यज्ञ से बल-पराक्रमादि गुण प्राप्त होते हैं। यह यजुर्वेद के मन्त्रों से ज्ञात हो सकता है। अन्तिम मन्त्र में परमेश्वर को स्वयं प्रकाशमान् शुद्ध स्वरूप और अमृत अर्थात् नाशरहित, सब पदार्थों को धारण करने वाला, देवों - विद्वानों का हितकारक एवं विद्वानों द्वारा पूजा उपासना किये जाने योग्य अर्थात् उपास्य हैं। ऐसा परमेश्वर ही हमारे जीवन को पवित्र करता है। यज्ञ भी शुद्धि एवं पवित्रता का हेतु अर्थात् कारण है। इसलिये इस मन्त्र में परमात्मा और यज्ञ दोनों के गुणों का विवेचन किया गया है। अध्याय के अन्त[१७] में ऋषि ने लिखा है कि 'ईश्वर ने इस अध्याय में मनुष्यों को शुद्ध कर्म के अनुष्ठान, शत्रुओं की निवृत्ति, यज्ञ क्रिया के फल को जानने, अच्छे प्रकार पुरुषार्थ करने, वेदों से सब विद्याओं को ग्रहण करने और कराने को शुद्धि तथा परोपकार के लिये प्रयत्न करने की आज्ञा दी है'।

**टिप्पणी :-**

१. *इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण अध्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजापतिरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशं सो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥* (यजु. १-१)
२. *वसोः पवित्रमसि द्यौरसि --- मा ते यज्ञपति ---* (यजु. १-२)
३. *वसोः पवित्रमसि शतधारम् ---* (यजु. १-३)
४. *--- विष्णो हव्यं रक्ष* (यजु. १-४)
५. *अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि --- सत्यमुपैमि* (यजु. १-५)
६. *कस्त्वा युनक्ति सत्वा युनक्ति ---* (यजु. १-६)
७. *प्रत्युष्टं रक्ष प्रत्युष्टा अरातयो ---* (१-७)
८. *धूरसि धूर्व धूर्वन्त ---* (१-८)
९. *अह्रुतमसि हविधानं दृंस्व मा* (१-९)
१०. *भूताय त्वा नारातये --- शहव्यं रक्ष* (१-११)
११. *पवित्रे स्थो --- यज्ञपतिं देवयुवम* (१-१२)
१२. *यज्ञाद् भवति पर्जन्यो पर्जन्यादन्न संभवः* (गीता)
१३. *कुक्कुटोऽसि मधुजिह्व इषभूर्जभावद् ---* (१-१६)
१४. *घृष्टिरसि --- अग्निमामादं ---* (१-१७)
१५. *घृष्टिरसि --- अग्नि अग्रणीर्भवति, अग्रेनयति ---* (निरूक्त)
१६. *आदित्यै रास्तासिविष्णो --- यजुपे* (१-३०)
१७. *सवितु स्तवा प्रसव उत्पुनाम्य --- देवयजनमसि* (१-३१)

# अध्याय - २

**विषय विवेचन :-** यजुर्वेद के द्वितीय अध्याय में ३४ मन्त्र हैं। द्वितीय अध्याय में विद्यमान विषयों का संक्षेप से विवेचन प्रस्तुत करते हुए ऋषि ने लिखा है कि ''ईश्वर ने इस दूसरे अध्याय में जो जो वेदी आदि यज्ञ के साधनों का बनाने, यज्ञ का फल, सामग्री, आत्मा और इन्द्रियादि पदार्थों की शुद्धि, पुरुषार्थ का सन्धान, युद्ध में शत्रुओं को जीतना, सुखों का भाग, ईश्वर में प्रीति, यज्ञ में होम किये हुए पदार्थों का तीनों लोक में जाना, आना, स्वयम्भू शब्द का वर्णन, गृहस्थों का कर्म, सत्य का आचरण, दुष्टों का निवारण'', इत्यादि विविध विषयों का वर्णन है।

**लोकहित कार्य :-** प्रथम मन्त्र में यज्ञ वेदी और यज्ञ के पात्र के विषय में वर्णन किया गया है जिनके द्वारा यज्ञ किया जाता है[१]। द्वितीय मन्त्र में सभी प्राणियों के सुख के लिये मनुष्यों को यज्ञ करना चाहिये और यज्ञ करने के साथ-साथ सभी के साथ सत्य व्यवहार करते हुए पक्षपात छोड़कर सभी प्राणियों के सुख के लिये प्रयत्न करना चाहियें[२]। परमात्मा ने द्युलोक की अग्नि-सूर्य को अन्तरिक्ष की अग्नि-विद्युत् और पृथिवी की अग्नि भौतिक अग्नि को बनाया। तीनों लोकों में तीन पृथक्-प्रयक् अग्नि तत्त्व हैं, विद्वान् इन तीनों तत्त्वों का गहन अध्ययन करके इनसे विविध वैज्ञानिक यन्त्रों का निर्माण करके शिल्प विद्या (टेक्नोलोजी) के द्वारा विश्व कल्याण के कार्यों को करें, यह सन्देश तीसरे मन्त्र में दिया है[३]। परमात्मा ने जितने पदार्थों का निर्माण किया है उन पदार्थों की सहायता से अधिकाधिक लोकहित का कार्य करना चाहिये, उनके विषय में विस्तार से जानकारी प्राप्त करनी चाहियें[४]।

**यज्ञ महिमा :-** यज्ञ की महिमा का वर्णन करते हुए परमात्मा ने उपदेश दिया है कि यज्ञ करते हुए अग्नि में जिन पदार्थों को डाला जाता है, सूर्य और वायु सूक्ष्म हुए उन पदार्थों को सब ओर फैला देते हैं, उन पदार्थों की रक्षा करते हुए उन्हें वापस पृथिवी पर छोड़ देते हैं, जिससे पृथिवी में दिव्य औषधियां और उत्तम पदार्थ प्राप्त होते हैं। उनसे जीवों को नित्य सुख मिलता है। इस कारण सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान सदैव करना चाहियें[५]। यह उल्लेख ऋषि ने इस मन्त्र का भाष्य करते हुए किया है। इसके पश्चात् अगले दो-तीन मन्त्रों में यज्ञ की महिमा का वर्णन है अग्नि की ज्वाला (लपट) ऊपर उठती है, ऊपर उठने का उस का स्वभाव है, सब पदार्थों को छिन्न भिन्न (सूक्ष्म) कर देती है। यज्ञ से जल-वायु शुद्ध होकर बहुत अन्न उत्पन्न होता है इसलिये ''यज्ञ का अनुष्ठान सब मनुष्यों को सदा करना चाहिये''[६]।

**पुरुषार्थी और उपासक :-** जो मनुष्य परोपकारी और ईश्वर के उपासक हैं उनकी सब कामनाएं पूरी होती हैं। इस विषय में मन्त्र में उल्लेख किया है जिसका भाष्य करते हुए ऋषि ने लिखा है कि ''जो मनुष्य पुरुषार्थी-परोपकारी और ईश्वर के उपासक है वे ही श्रेष्ठ ज्ञान, उत्तम धन और सत्य कामनाओं को प्राप्त होते हैं''[७]।

इसलिये अपने आत्मकल्याण के लिये पुरुषार्थ करने के साथ-साथ परमात्मा की उपासना सदा करते रहना चाहिये (यजु. २-११) क्योंकि परमात्मा ने विद्या की प्राप्ति और यज्ञादि सत्कर्मों के अनुष्ठान के लिये चारों वेदों का ज्ञान अग्नि-वाय - आदित्य और अंगिरा इन चारों ऋषियों को दिया (२-१२) परमात्मा का नाम ओम् है। यह उपदेश भी अगले मन्त्र में दिया है[६]। परमात्मा को ध्यान में रखकर मनुष्य को सदा अधर्म छोड़कर धर्म कामों का ही सेवन करना चाहिये। अर्थात् पुरुषार्थ और ईश्वर उपासना मनुष्य को करनी चाहिये जिससे सुख प्राप्त होता है। पुरुषार्थ करनेवाला व्यक्ति सदा सुख प्राप्त करता है इस विषय में लिखा है कि-जो धार्मिक पुरुषार्थी और वेद विद्या के प्रचार या उत्तम व्यवहार में वर्तमान है उन्हीं को बड़े-बड़े सुख होते हैं[७]। अर्थात् धर्म का आचरण करना, पुरुषार्थ करना, वेदों का प्रचार करना और अच्छे आचरण के द्वारा मनुष्य सुख को प्राप्त करता है।

**परमात्मा के गुण :-** परमात्मा कैसा है ? उसका वर्णन करते हुए लिखा है कि "मनुष्यों को जो सर्वव्यापक सब प्रकार से रक्षा करने, उत्तम जन्म देने, उत्तम कर्म कराने और उत्तम विद्या वा उत्तम भोग देनेवाला जगदीश्वर है, उसी का सेवन सदा करना योग्य है[१०]। मनुष्य जिस परमात्मा की उपासना करता है उस परमात्मा के गुणों का ज्ञान होना मनुष्य को आवश्यक है। इसी विषय में आगे लिखा है कि परमेश्वर ने वेद विद्या प्रकाशित की है उसकी उपासना करके उसी वेद विद्या को जानकर -- उसमें जो जो काम कहे हुए हैं उनके किये बिना मनुष्यों को कभी सुख नहीं हो सकता[११]। अर्थात् परमात्मा की उपासना वेदों में बताये गये सत्कर्मों के बिना मनुष्य को सुख नहीं प्राप्त हो सकता है।"

## ईश्वर किसको छोड़ता है ?

यज्ञ की महत्ता का वर्णन करते हुए वेद में पुनः लिखा है कि "जो हवि अच्छी प्रकार से शुद्ध किया हुआ यज्ञ के निमित्त अग्नि में छोड़ा जाता है वह अन्तरिक्ष में वायु, जल और सूर्य की किरणों के साथ मिलकर इधर-उधर फैलकर --- सब पदार्थों को दिव्य करके अच्छी प्रकार प्रजा को सुखी करता है। इससे मनुष्यों को --- यज्ञ का नित्य अनुष्ठान करना चाहिये[१२]। जो व्यक्ति यज्ञ को छोड़ देता है परमात्मा भी उसको छोड़ देता है यह अगले मन्त्र में निर्दिष्ट किया है। जो मनुष्य ईश्वर के --- आज्ञा देने योग्य व्यवहार को छोड़ता है वह सुखों से हीन होकर दुष्ट मनुष्यों से पीड़ा पाता हुआ सब प्रकार दुःखी रहता है --- जो यज्ञ को छोड़ता है --- ईश्वर भी उसे छोड़ देता है। --- ईश्वर उसको किस काम के लिये छोड़ देता है। उत्तर देनेवाला कहता है कि दुःख भोगने के लिये। जो ईश्वर की आज्ञा को पालता है वह सुखों से युक्त होने योग्य हैं[१३]।"

**परमात्मा न्यायकारी :-**परमेश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुए वेद में लिखा है कि परमात्मा "स्वयम्भू" है उसका जन्म नहीं होता है और उसके कोई

माता पिता भी नही हैं। वह सबसे श्रेष्ठ - प्रशंसनीय ज्ञान युक्त है, हे प्रभो आप हमें ज्ञान दीजिए यह प्रार्थना इस मन्त्र से की गयी हैं[१४]। आगे पुनः परमात्मा को व्रतों का स्वामी कहा गया है, परमात्मा की न्याय व्यवस्था पूर्ण है, उसमें कोई न्यूनाधिकता नहीं होती है। उस व्यवस्था का वर्णन करते हुए ऋषि दयानन्द ने लिखा है कि "मै जैसा कर्म करता हूँ वैसा ही परमेश्वर की व्यवस्था से फल भोगता हूँ और भोगूंगा। सब प्राणियों को अपने कर्म से विरूद्ध फल कभी नहीं प्राप्त होते इसलिये सुख भोगने के लिये धर्मयुक्त कर्म ही करना चाहिये"। अर्थात् मनुष्य को परमात्मा की न्याय व्यवस्था को ध्यान में रखकर पाप कर्मों से सदा दूर रहना चाहियें[१५]। परमात्मा की न्याय व्यवस्था का वर्णन करते हुए यजुर्वेद के मन्त्र की व्याख्या करते हुए ऋषि ने लिखा है कि "जो दुष्ट मनुष्य अपने मन, वचन और शरीर से झूठे आचरण करते हुए अन्याय से अन्य प्राणियों को पीड़ा देकर अपने सुख के लिये औरों के पदार्थों को ग्रहण कर लेते हैं, ईश्वर उनको दुःखयुक्त करता है और नीच योनियों में जन्म देता हैं[१६]।" ईश्वर न्याय व्यवस्था में मनुष्य को इस जन्म में भी उनके किये हुए कर्मों का फल मिलता है और इसके बाद अगले जन्म में भी शेष कर्मों का फल भोगना पड़ता है क्योंकि परमात्मा न्यायकारी है।

**माता पिता की सेवा :-** माता पिता की सेवा करने के विषय में वेदों में अनेक स्थानों पर उपदेश दिया गया है। हमारे जीवन के निर्माण में माता - पिता और गुरु इन तीनों का महत्वपूर्ण योगदान होता है इसलिये हमारा भी कर्तव्य है कि हम श्रद्धा भक्ति से इनकी सेवा करें। इस विषय में वेद में लिखा है कि "मनुष्य लोग माता पिता आदि धार्मिक सज्जन विद्वानों को समीप आये हुए देखकर उनकी सेवा करे। प्रार्थनापूर्वक वाक्य कहें कि हे पितरों। आप लोगों का आना हमारे उत्तम भाग्य से होता है -- जो जो आपके प्रिय पदार्थ हमारे लाने योग्य हों उन - उन की आज्ञा दीजिये -- आप विद्या वा धर्म के उपदेश (दीजिये जिससे) हम लोग अच्छे कामों को करके -- सुख और विद्या की उन्नति नित्य किया करें[१७]। इससे अगले मन्त्र में भी पितरों की सेवा करके उनसे उपदेश ग्रहण करने का वर्णन करते हुए लिखा है कि मनुष्यों को चाहिये कि उक्त पितरों को उंत्तम उत्तम पदार्थों से सन्तुष्ट करके उनसे विद्या के उपदेश का निरन्तर ग्रहण करें"[१८]। इसके पश्चात् अगले मन्त्र में पुनः लिखा है कि माता-पिता और गुरुजन सन्तान को श्रेष्ठ विद्या से युक्त करके सुसंस्कारित करें और सदा सुखी रहें। इस अध्याय के अन्तिम मन्त्र का भावार्थ लिखते हुए ऋषि ने लिखा है कि तुम को हमारे पिता माता आदि वा विद्या के देनेवाले प्रीति से सेवा करने के योग्य हैं जैसे कि उन्होंने बाल्यावस्था वा विद्यादान के समय हम और तुम को पाला है वैसे हम लोगों के बीच में विद्या का नाश और कृतघ्नता आदि दोष कभी न प्राप्त हों[१९]।

**टिप्पणी :-**

*१. कृष्णोऽस्याखरेष्ठो --- जुष्टं प्रोक्षामि* (२-१)

२. अदित्यै व्यन्दनमसि --- भूतानां पतये स्वाहा (२-२)
३. गन्धर्वस्त्वा विश्वावसु परिदधातु --- (२-३)
४. वीति होत्रन्त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि --- (२-४)
५. समिदसि सूर्यस्य त्वा --- आदित्याः सदन्तु (२-५)
६. महर्षि दयानन्द यजुर्वेद भाष्य (२-८)
७. मयीदमिन्द्र --- (दयानन्द भाष्य २-१८)
८. मनो जूतिः --- ओम्प्रतिष्ठ (दयानन्द भाष्य २-१३)
९. संस्रव भागा स्थेषा --- स्वाहा वाट (दयानन्द भाष्य २-१८)
१०. अग्न अदब्धयोऽशीतम --- (दयानन्द भाष्य २-२०)
११. वेदोऽसि येन त्वं देव --- (दयानन्द भाष्य २-२१)
१२. सं --- हविषा घृतेन --- स्वाहा (दयानन्द भाष्य २-२२)
१३. कस्त्वा विमुञ्चति ---- (दयानन्द भाष्य २-२३)
१४. स्वयम्भूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि (यजु. २-२६)
१५. अग्ने व्रतपते --- (दयानन्द भाष्य २-२८)
१६. ये रूपाणि प्रतिमुंचमाना असुरा --- प्रणुदात्यस्मात् ॥ (यजु. २-३० दया. भाष्य)
१७. अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषयण्वम् --- (दयानन्द भाष्य २-३१)
१८. नमो वः पितरो रसाय नमो वः --- (दयानन्द भाष्य २-३२)
१९. अर्ज्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः --- (दयानन्द भाष्य २-३४)

# अध्याय - ३

**विषय विवेचन :-** यजुर्वेद के तृतीय अध्याय में ६३ मन्त्र हैं। इस अध्याय में किन विषयों का वर्णन है इसका उल्लेख करते हुए ऋषि ने लिखा है कि "इस तीसरे अध्याय में अग्निहोत्र, अग्नि के स्वभाव का अर्थ का प्रतिपादन, पृथिवी के भ्रमण, ईश्वर की प्रार्थना उपासना, --- का फल, गायत्री मन्त्र के अर्थ का प्रतिपादन, यज्ञ के फल का प्रकाश, --- पुरुषार्थ का आवश्यक करना, पाप से निवृत्त होना, सत्य से लेन देन आदि व्यवहार करना, रूद्र शब्द के अर्थ का प्रतिपादन आदि का वर्णन किया है"।

**यज्ञ का महत्व :-** इसके प्रारम्भिक मन्त्रों में अग्निहोत्र - यज्ञ की विशेषताओं का वर्णन है। समिधा और घृत से यज्ञ की अग्नि को प्रज्वलित रखकर उसमें रोगनाशक, पुष्टिकारक और सुगन्धित पदार्थों से युक्त हवि अर्थात् हवन सामग्री से आहुति देनी चाहिये[१]। यज्ञ की महत्ता का वर्णन करते अग्न्याधान मन्त्र के द्वारा वेद ने सन्देश दिया है कि यज्ञ की अग्नि में डाला हुआ पदार्थ क्षेत्रफल और गुणात्मक दृष्टि से हजारों गुणा शक्तिशाली हो जाता हैं[२]। मिर्च को व्यक्ति के हाथ में रखे तो कोई कष्ट नहीं होता, यदि उसी मिर्च को अग्नि में डाल दें, घर में रहनेवाले सभी उससे प्रभावित होकर खांसने लगते हैं। इस तरह अग्नि में डालने से मिर्च की शक्ति हजारों गुणा बढ़ जाती है। इसीलिये वेद में अग्नि को 'अन्नाद' कहा है[३]। घृत विषनाशक है इसलिये यज्ञ में घी की आहुति देने से विषैले कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। घी से यज्ञ की अग्नि को अत्याधिक प्रचण्ड - तेज करना चाहियें[४]। इस प्रकार भौतिक पर्यावरण की शुद्धि में यज्ञ का महत्वपूर्ण स्थान है, यह तृतीय अध्याय के कतिपय मन्त्रों द्वारा स्पष्ट किया गया है।

**पुरुषार्थ से उन्नति :-** मनुष्य को अग्नि --- जल --- वायु --- विद्युत आदि भौतिक पदार्थों का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करके, वैज्ञानिक उन्नति करके भौतिक सुख सुविधाओं को प्राप्त करना चाहिये। इस विषय में मन्त्र की व्याख्या करते हुए ऋषि ने लिखा है कि "जो मनुष्य ईश्वर की सृष्टि में अग्नि और वायु के गुणों को जानकर कार्यों में संप्रयुक्त करके अपने-अपने कार्यों को सिद्ध करते हैं वे सब भूगोल के राज्य आदि धनों को प्राप्त होकर आनन्द करते हैं[५]।" भौतिक ज्ञान विज्ञान की उन्नति के लिये मनुष्य को सदा परिश्रम करना चाहिये, आलस्य और प्रमाद नहीं करना चाहिये। इस विषय में उपदेश देते हुए वेद में लिखा है कि "मनुष्यों को अपने पुरुषार्थ, ईश्वर की उपासना, तथा आवश्यक पदार्थों से उपकार लेके दुःखों से पृथक् होकर उत्तम उत्तम सुखों को प्राप्त होकर सौ वर्ष जीना चाहिये अर्थात् क्षणभर भी आलस्य में नहीं रहना किन्तु जैसे पुरुषार्थ की वृद्धि हो वैसा अनुष्ठान निरन्तर करना चाहियें[६]।" पुरुषार्थ के द्वारा ही मनुष्य सुख प्राप्त करता है इस विषय में अगले मन्त्र में उपदेश देते हुए लिखा है कि "मनुष्य लोग ईश्वर की आज्ञा का पालन, अपना

पुरुषार्थ और अग्नि आदि पदार्थों के संप्रयोग से इन सब सुखों को प्राप्त होते हैं"। मनुष्य को पुरुषार्थ से भौतिक पदार्थों के गुण - उनकी कार्यक्षमता को जानकर कुशलपूर्वक उनका प्रयोग करके सांसारिक सुखों का उपभोग करना चाहिये यह सन्देश भी दिया गया है''।

**विद्वान् की प्रशंसा :-** विद्वानों की प्रशंसा करते हुए वेद में लिखा है कि ''जहां विद्वान् लोग निवास करते हैं वहां प्रजा विद्या - उत्तम शिक्षा और धन वाली होकर निरन्तर सुखों से युक्त होती है। विद्वानों को सामान्य जनों को उत्तम शिक्षा देनी चाहिये। जिससे वे दुर्गुण दुर्व्यसनों से दूर रहकर पुरुषार्थ करके धन प्राप्त करने में प्रयत्नशील हों तो अपने धन का उपयोग शुभ कर्मों में करें जिससे वे सुखों का उपभोग करते रहें, यह संकेत वेद के दसवे मन्त्र से मिलता है''।

विद्वान की प्रशंसा करते हुए परमेश्वर को सम्बोधित करते हुए एक मन्त्र की व्याख्या करते हुए ऋषि ने लिखा है कि ''हे सब के पालन करनेवाले परमेश्वर ! जैसे कृपा करने वाला कोई विद्वान् मनुष्य अपने पुत्रों की रक्षा श्रेष्ठ-श्रेष्ठ शिक्षा देकर विद्या - धर्म - अच्छे अच्छे स्वभाव और सत्य विद्या आदि गुणों से संयुक्त करता है वैसे ही आप हम लोगों की निरन्तर रक्षा करके श्रेष्ठ - श्रेष्ठ व्यवहारों में संयुक्त कीजिये''।

**प्रार्थना और पुरुषार्थ :-** मनुष्य सांसारिक पदार्थों का संग्रह करके स्वयं को उन पदार्थों का स्वामी समझने लगता है। वेद में यथार्थता का उपदेश देते हुए लिखा है कि सांसारिक पदार्थों का स्वामी (मालिक) मनुष्य नहीं अपितु परमेश्वर है। मन्त्र की व्याख्या करते हुए ऋषि ने लिखा है कि ''इस संसार में जो धन है सो सब जगदीश्वर का ही है। मनुष्य लोग जैसी परमेश्वर की प्रार्थना करें वैसा ही उनको पुरुषार्थ करना चाहिये। ---- अपने पुरुषार्थ से विद्या आदि धन की वृद्धि वा रक्षा निरन्तर करनी चाहिये। अर्थात् मनुष्य को प्रार्थना करके धन विद्यादि पदार्थ नहीं प्राप्त होते है अपितु पुरुषार्थ के साथ प्रार्थना करनी चाहिये। आलसी और प्रमादी व्यक्ति की प्रार्थना परमात्मा तो क्या मनुष्य भी नहीं सुनता है। परिश्रम करने से धन प्राप्त होने पर कभी मनुष्य अहंकार ग्रस्त न हो जाय, जीवन नम्रता और सरलता से युक्त रहे इसलिये प्रार्थना करनी चाहिये। इतना ही नहीं इस विषय में लिखा है कि ''मनुष्यों को उत्तम उत्तम पदार्थों की कामना निरन्तर करनी तथा उनकी प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना और सदा पुरुषार्थ के साथ करना चाहियें''। प्रार्थना और पुरुषार्थ के विषय में एक मन्त्र में उपदेश दिया है कि ''मनुष्यों को सबकी रक्षा करने वाले परमेश्वर वा (ज्ञान) विज्ञान की प्राप्ति के लिये प्रार्थना और अपना पुरुषार्थ नित्य करना चाहिये''। इस प्रकार वेद में पुरुषार्थ करने के साथ साथ प्रार्थना करने का तथा जैसी प्रार्थना करे उसके अनुसार आचरण करने से मनुष्य को सुख प्राप्त होता है और वही मनुष्य भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति करने में सफल हो सकता है।

**गृहस्थाश्रम का महत्व :-** गृहस्थाश्रम की आवश्यकता योग्यता और महत्ता का वर्णन करते हुए वेद में लिखा है कि "मनुष्यों को पूर्ण ब्रह्मचर्याश्रम का सेवन करके युवावस्था में स्वयंवर की रीति से दोनों के तुल्य स्वभाव विद्या - रूप - बुद्धि और बल आदि गुणों को देखकर विवाह करना तथा शरीर आत्मा के बल को सिद्ध कर और पुत्रों को उत्पन्न करके सब साधनों से अच्छे - अच्छे व्यवहारों में स्थित रहना चाहिये --- क्योंकि सब अच्छे व्यवहार वा सब आश्रमों में यह गृहस्थाश्रम मूल है --- इस गृहस्थाश्रम के बिना मनुष्यों की वा राज्यादि व्यवहारों की सिद्धि कभी नहीं होती[६]"। इससे अगले मन्त्र[१५] में गृहस्थ को अतिथि यज्ञ अर्थात् धार्मिक विद्वान सन्त या महात्मा बिना पूर्व सूचना घर पर आ जाय तो उनका श्रद्धा पूर्वक भोजन आदि पदार्थों के द्वारा स्वागत सत्कार करना चाहिये। गृहस्थ व्यक्ति को ईश्वर की उपासना और यज्ञ करना चाहिये। इस विषय में आगे लिखा है कि गृहस्थों को योग्य है कि गौ, हाथी, घोड़े आदि पशु तथा खाने पीने योग्य स्वादु भक्ष्य पदार्थों का संग्रह कर अपनी वा औरों की रक्षा करके विज्ञान धर्म - विद्या और पुरुषार्थ से इस लोक वा परलोक के सुखों को सिद्ध करे। पुरुषार्थ वाले होकर धर्म से चक्रवर्ती राज्य आदि --- को संग्रह कर उनकी अच्छे प्रकार रक्षा करके उत्तम उत्तम सुखों को प्राप्त हों[१५]। इस तरह अनेक मन्त्रों में गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों का सुन्दर विवेचन किया गया है।

**सत्य से सफलता :-** गृहस्थ के कर्तव्यों का वर्णन करने के बाद युद्ध में विजय किस प्रकार प्राप्त करे, युद्ध में दुश्मन को पराजित करने के साधनों का वर्णन करके यज्ञ के लिये यजमान के कार्यों का विवेचन तथा जिन पदार्थों से यज्ञ किया जाता है। उन सबका वर्णन करने पर सभी मनुष्यों को परस्पर किस प्रकार एक दूसरे के साथ व्यवहार करना चाहिये इसका उपदेश वेद मन्त्र में दिया है। जिसकी व्याख्या करते हुए ऋषि ने लिखा है कि "सब मनुष्यों को देना लेना, पदार्थों को रखना रखवाना वा धारण करना आदि व्यवहार सत्य प्रतिज्ञा से ही करने चाहिये। --- किसी ने कहा कि मेरी यह वस्तु तुम अपने पास रख लेओ जब इच्छा करूं तब तू दे देना। इसी प्रकार मैं तुम्हारी यह वस्तु रख लेता हूँ। जब तुम इच्छा करोगे तब देऊंगा (अर्थात् दे दूंगा) --- इत्यादि ये सब व्यवहार सत्यवाणी से ही करने चाहिये और ऐसे व्यवहारों के बिना किसी मनुष्य की प्रतिष्ठा वा कार्यों की सिद्धि नहीं होती[१]। कोई मनुष्य सुखों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता अर्थात् सत्य व्यवहार करने से ही मनुष्य को सुख प्राप्त होता है। सत्य बोलने वाले व्यक्ति का यश भी फैलता है, प्रतिष्ठा बढ़ती है और उसको कार्यों में सफलता भी प्राप्त होती है।"

**ईश्वर और मोक्ष :-** सत्य व्यवहार का उपदेश देकर मन के विषय में कई मन्त्रों में उपदेश दिया है। मन की पवित्रता से ही मनुष्य सत्कर्म करने में प्रयत्नशील

होता है। इसलिये हमारा मन शुद्ध - पवित्र विचारों से युक्त हो। शुद्ध मन से शुद्ध और पवित्र कर्म करने के कारण मनुष्य को पुनः श्रेष्ठ मानव शरीर प्राप्त होगा यह सन्देश वेद मन्त्र में दिया है[१]। मन का वर्णन करने के पश्चात् 'प्राणों' का विवेचन अगले मन्त्र में किया है। इसके अनन्तर ईश्वर का वर्णन करते हुए सन्देश दिया है कि "किसी मनुष्य को परमेश्वर की उपासना के बिना शरीर, आत्मा और प्रजा का दुःख दूर होकर सुख नहीं हो सकता[११] --- मनुष्य लोग ईश्वर को छोड़कर किसी का पूजन न करे --- जैसे खरबूजा फल लता में लगा हुआ अपने आप पक कर समय के अनुसार लता से छूटकर सुन्दर स्वादिष्ट हो जाता है। वैसे ही हम लोग पूर्ण आयु को भोग कर शरीर को छोड़ के मुक्ति को प्राप्त होवे। कभी मोक्ष की प्राप्ति के अनुष्ठान --- की इच्छा से अलग न होवे और कभी नास्तिक पक्ष को लेकर ईश्वर का अनादर न करें --- हम लोग ईश्वर - वेद - वेदोक्त धर्म और मुक्त होने के लिये निरन्तर श्रद्धा करें[२०]"।

**रुद्र का अर्थ ईश्वर तथा क्षत्रिय :-** वेद में "रुद्र" शब्द परमात्मा के लिये आता है क्योंकि दुष्ट कर्म करनेवाले व्यक्ति को दण्ड देकर उसे रुलाता है इसलिये परमेश्वर को "रुद्र" कहते हैं। इसी प्रकार राजा - न्यायाधीश - सेनापति आदि के लिये भी 'रुद्र' शब्द का प्रयोग वेद में हुआ है क्योंकि चोर - डाकू और शत्रु को दण्ड देकर उसे रुलाया जाता है इसलिये राजा, न्यायाधीश या सेनापति आदि को 'रुद्र' कहते हैं। इसलिये मन्त्र[२१] में 'रुद्र' शब्द का अर्थ करते हुए ऋषि ने लिखा है कि "हे (रुद्र) शत्रुओं को रुलाने वाले युद्ध विद्या में कुशल सेनाध्यक्ष! --- हे मनुष्यों! तुम शत्रुओं से रहित होकर राज्य को निष्कंटक करके सब - सब अस्त्र शस्त्रों का सम्पादन करके दुष्टों का नाश और श्रेष्ठों की रक्षा करो कि जिससे --- सज्जन लोग दुःखी कदापि न होवे"। अर्थात् दुष्टों को दण्ड देकर राजा सज्जन की रक्षा करता है इसलिये उसे 'रुद्र' कहते हैं।

**आस्तिक-नास्तिक :-** इस अध्याय के अन्तिम मन्त्र की व्याख्या में परमेश्वर की महत्ता का वर्णन करते हुए ऋषि ने लिखा है कि "जो नास्तिक होकर ईश्वर का अनादर करता है उसका सर्वत्र अनादर होता है। इससे सब मनुष्यों को आस्तिक बुद्धि से ईश्वर की उपासना करनी योग्य है[२३]"। अर्थात् सृष्टि की विशालता, नियमितता, प्राणियों की विविधता तथा मानव शरीर की अद्‌भुत रचना को देखकर ईश्वर के अस्तित्व को मानकर उसकी उपासना करके मनुष्य को सुख प्राप्त करना चाहिये। आस्तिक व्यक्ति को सुख ही नहीं अपितु सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्राप्त होती है।

**टिप्पणी :-**

१. *समिधाग्निं दुवस्यत घृतै र्बोधयतातिथिम्* --- (३-१)
२. *भू र्भुवःस्वः। द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा* --- (३-५)
३. *अन्नादम् --- आदधे* (३-५)

४. तं त्वा समिद्भिः --- घृतेन वर्धयामसि (३-३)
५. उभत्त वामिन्द्राग्नी आहु वध्या उभत्त राधस --- (३-१३)
६. इन्धानास्त्वा शतं हिमा --- स्वस्ति ते पारमशीय ॥ (३-१८ दया. भाष्य)
७. सं त्वमग्न सूर्यस्य --- रायस्योषेण निषीय (३-१९ दया. भाष्य)
८. अन्ध स्थान्धो वो --- रायस्योषं वो भक्षीय (३-२०)
९. रेवती रमध्वमसिन् योनावस्मिन् गोष्ठे --- (३-२१ दया. भाष्य)
१०. स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव --- (३-२४ दया. भाष्य)
११. यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित् पृष्टि वर्द्धनः (३-२९ दया. भाष्य)
१२. दूड एह्यदित एहि काम्या --- काम धरणं भूयात् (३-२७ दया भाष्य)
१३. परिते दूडभो रथो --- येन रक्षांसि दाशुषः (३-३६ दया. भाष्य)
१४. गृहा मा बिभीत --- मनसा मोदमानः (३-४१ दया. भाष्य)
१५. --- गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः । (३-४२)
१६. उपहूता इह गाव --- शंयोः शंयोः (३-४३ दया. भाष्य)
१७. देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे --- (३-५० दया. भाष्य)
१८. पुर्नः पितरो मनो ददातु दैव्या जनः --- (३-५५)
१९. भेषजमसि --- सुखम्मोपाय मे ष्यै --- (३-५९)
२०. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धन --- (३-६० दया. भाष्य)
२१. एतत्ते रूद्रावसं तेन परो मूजवतः --- (३-६१) (यजु. ३-६२ दया. भाष्य)
२२. शिवो नामासि स्वधिति स्ते पिता नमस्तेऽस्तु --- (३-६३ दया. भाष्य)

# अध्याय - ४

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में ३७ मन्त्र हैं। इस अध्याय में विद्यमान विषयों का उल्लेख करते हुए ऋषि ने लिखा है कि "इस अध्याय में शिल्प विद्या, दृष्टि की पवित्रता का सम्पादन, विद्वानों का संग यज्ञ का अनुष्ठान, उत्साह आदि की प्राप्ति, युद्ध का करना, यज्ञ के गुणों का वर्णन, सत्य व्रत का धारण, अग्नि - जल के गुणों का वर्णन, पुनर्जन्म का कथन, ईश्वर की प्रार्थना, यज्ञानुष्ठान, माता पिता और पुत्रादिकों का आपस में अनुकरण, यज्ञ की व्याख्या --- सूर्य गुण वर्णन, पदार्थों के क्रय विक्रय का उपदेश, मित्रता करना, धर्म मार्ग में प्रचार करना --- चोर आदि का निवारण --- यज्ञ का फल" इत्यादि विषयों का वर्णन है।

**जल का महत्व :-** प्रथम मन्त्र[१] में जल की महत्ता का वर्णन करते हुए लिखा है कि "ये शुद्ध जल सुख देने वाले होते हैं --- तू भी उनको प्राप्त हो, सेवन और आनन्द करे। वे जल आदि पदार्थ भी तुझको सुख कराने वाले होवें"। अर्थात् शुद्ध जल से मनुष्य को सुख और शान्ति प्राप्त होती है। गर्मी से व्यक्ति परेशान हो रहा हो तो ठण्डे पानी से स्नान करने से उसे शान्ति मिलती है, आंखें जलती हों तो ठण्डे पानी के छींटे देने से आँखों को ठण्डक मिलती है, क्रोधी व्यक्ति को पानी पिला दिया जाय तो उसका क्रोध शान्त हो जाता है। पुन: जल की विशेषताओं का वर्णन अगले मन्त्र की व्याख्या करते हुए ऋषि ने लिखा है कि मनुष्यों को उचित है कि जो सब सुखों को प्राप्त करने, प्राणों को धारण कराने तथा माता के समान पालन के हेतु जल है, उनसे सब प्रकार पवित्र होके इनको शोध कर मनुष्यों को नित्य सेवन करने चाहिये"[२]। इसके पश्चात् अगले मन्त्रों में बादलों से पानी प्राप्त होता है, बादल का निर्माण सूर्य के कारण और सूर्य तथा जगत् का निर्माता ईश्वर है यह वर्णन किया गया है।

**वेद सम्मत कर्म :-** मनुष्य को किस प्रकार कर्म करने चाहिये इसको स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम विद्वानों के संग से उत्तम - उत्तम विद्याओं का सम्पादन कर अपनी इच्छाओं को पूर्ण करके इन विद्वानों का संग और सेवा सदा करनी चाहिये"[३]। अर्थात् विद्वानों के सानिध्य में रहकर ही मनुष्य शुभ कर्म कर सकता है। अगले मन्त्र में स्पष्ट किया है कि जैसा वेदों में शुभ कर्म करने का निर्देश किया उसी के अनुसार मनुष्य को कर्म करना चाहिये। यज्ञ का अनुष्ठान भी वेदों के अनुसार होना चाहिये[४]। यज्ञ की आवश्यकता का उल्लेख करते हुए लिखा है कि यज्ञ के अनुष्ठान के विना उत्साह, बुद्धि, सत्यवाणी, धर्माचरण की रीति, तप, धर्म का अनुष्ठान और विद्या की पुष्टि सम्भव नहीं होती और इनके बिना कोई भी मनुष्य परमेश्वर की आराधना करने को समर्थ नहीं हो सकता"[५]।

**शिल्प एवं भौतिक विद्या :-** वेद सम्मत कर्म करने का उपदेश देकर शिल्प विद्या का वर्णन अनेक मन्त्रों में आया है। शिल्प विद्या को जाननेवाले को परमैश्वर्य युक्त और सुख का उपभोग करने वाला कहा है[६]। मनुष्य को शिल्प विद्या में पारंगत होकर स्वतंत्र होकर ज्ञान - विज्ञान शिल्प कला में कुशल होकर सुखी रहना चाहिये यह सन्देश वेद में दिया गया है।

भौतिक उन्नति से मनुष्य सांसारिक सुख प्राप्त करता है। इस लिये भौतिक विज्ञान शिल्प कला - कौशलादि में प्रयत्न करने के लिये वेद मन्त्र की व्याख्या करते हुए ऋषि ने लिखा है कि ''मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उत्पन्न की हुई इस सृष्टि में विद्या से, कला यन्त्रों को सिद्ध करके सब सुखों को प्राप्त करें[७]''।

**श्रेष्ठ व्यवहार का प्रभाव :-** मनुष्य को परस्पर किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये इसका उल्लेख मन्त्र के भावार्थ में ऋषि ने स्पष्ट किया है कि ''जैसे धर्मात्मा, विद्वान, माता पिता आदि सत्य व्यवहार में प्रवृत्त हों वैसे पुत्रादि और जैसे विद्वान् धार्मिक पुत्रादि धर्मयुक्त व्यवहार में वर्तें, वैसे माता पिता आदि को भी वर्तना चाहियें[८]''। अर्थात् माता - पिता का सन्तान के साथ तथा सन्तान का माता पिता के साथ धर्मपूर्वक व्यवहार होना चाहिये।

माता - पिता के व्यवहार का प्रभाव सन्तान पर पड़ता है, जैसा व्यवहार बच्चे माता पिता का देखते हैं वैसा ही वे भी व्यवहार करने लग जाते हैं इस लिये माता पिता को धर्मपूर्वक श्रेष्ठ सद् व्यवहार करना चाहिये, यह संकेत वेद मन्त्र में दिया है। ''मनुष्य को सत्य विद्या और धर्म से संस्कार की हुई वाणी'' का प्रयोग करना चाहिये, यह संकेत ऋषि ने वेद मन्त्र का भावार्थ करते हुए दियाँ। मनुष्य को सत्य एवं मधुर वाणी का प्रयोग करना चाहिये[१०]। वाणी की कटुता से अपना व्यक्ति भी पराया हो जाता है और पराया व्यक्ति भी वाणी की मधुरता से अपना हो जाता है। झूठ बोलना, निन्दा करना या चापलूसी करना, कठोर बोलना या चुगली करना वाणी विषयक पाप है। इस लिये धर्म से संस्कारित की गयी सत्य वाणी बोलना चाहिये। श्रेष्ठ व्यवहार की चर्चा करते हुए अगले मन्त्रार्थ में लिखा है कि ''उत्तम - उत्तम गुणों में अपनी सन्तान और वीरों को संपादन करके सदा सुखी रहें[११]''। यदि सन्तान उत्तम गुणों से सम्पन्न होगी तो मनुष्य सुख प्राप्त कर सकेगा। इसलिये सन्तान को उत्तम गुणों से माता पिता को संस्कारित करना चाहिये।

**उपासना और सम्मान :-** श्रेष्ठ व्यवहार के उपदेश का वर्णन करने के बाद अगले मन्त्र में परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना उपासनादि का तथा धार्मिक राजा-सभाध्यक्षादि का सम्मान करना चाहिये। मन्त्र के भावार्थ में लिखा है कि ''विद्वान मनुष्यों को योग्य है कि प्रजा-पुरुषों के सुख के लिये इस परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना और श्रेष्ठ सभापति तथा धार्मिक प्रजाजन के सत्कार का उपदेश नित्य करें जिससे सब मनुष्य उनकी आज्ञा के अनुकूल सदा वर्तते रहें[१२]''। ईश्वर की उपासना के विषय में आगे पुनः लिखा है कि ''मनुष्यों के योग्य है कि शरीर मन, वाणी से परमेश्वर की उपासना का निरन्तर अनुष्ठान करके असंख्यात अतुल पुष्टि को प्राप्त करें[१३]''। अर्थात् ईश्वर की उपासना और श्रेष्ठों के सम्मान से मनुष्य को पर्याप्त सुख प्राप्त होता है।

राज्य में राजा प्रजा के व्यवहार का वर्णन करते हुए वेद मन्त्र में उपदेश दिया है कि राज्य (अर्थात् राज्यपुरुषों) और प्रजा पुरुषों को उचित है कि परस्पर प्रीति-उपकार और धर्मयुक्त व्यवहार में यथावत् वर्तें, शत्रुओं का निवारण, अविद्या वा अन्याय रूप अन्धकार का नाश और चक्रवर्ती राज्य आदि का पालन करके सदा आनन्द में रहें है[१४]''।

वेद में आध्यात्मिक वर्णन ही नहीं अपितु राज्य व्यवस्था कैसी होनी चाहिये, राजा और राज्य कर्मचारियों को प्रजा के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये ? प्रजा के कष्टों को दूर करने तथा शत्रुओं को समाप्त करने का राजा को सदा प्रयत्न करना चाहिये। धर्मपूर्वक व्यवहार करने से मनुष्य लौकिक सुख और मोक्ष को प्राप्त करने में भी सफल हो जाता है।

**ईश्वर और भौतिक विज्ञान :-** परमेश्वर के गुणों का वर्णन करते हुए अगले मन्त्र में लिखा है कि "परमेश्वर का स्वभाव है कि सूर्य और वायु आदि को धारण करता है। इसी प्रकार सूर्य और वायु का भी प्रकाश और स्थूल लोकों के धारण का स्वभाव है" (४-३०)। अर्थात् ईश्वर सूर्य, चन्द्र आदि लोक लोकान्तरों को प्रकाशित और धारण करता है। इतना ही नहीं "परमेश्वर अपनी विद्या का प्रकाश और जगत् की रचना से सब पदार्थों में उनके स्वभाव युक्त गुणों को स्थापन" अर्थात् परमेश्वर सभी पदार्थों को गुणयुक्त करता है (४-३१)। परमेश्वर की रचना को वर्णन करने के बाद मनुष्य भौतिक उन्नति करे इसका उल्लेख मन्त्र के भावार्थ में ऋषि ने लिखा है कि "मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम-उत्तम विमान आदि यानों को रच, उनमें बैठ, उनको यथायोग्य चला देश देशान्तर को जो, सब काल में स्वयं सुखों का भोग करें और दूसरों को करावें"[१५]। वैज्ञानिक विषयों का भी वेदों में स्पष्ट रूप से संक्षेप से वर्णन विद्यमान है, यह इस वेद मन्त्र के अर्थ से स्पष्ट होता है। परमात्मा की सर्व शक्तिमत्ता का वर्णन करते हुए मन्त्र के भावार्थ में ऋषि ने लिखा है कि "कोई परमेश्वर के विना सब जगत्, रचने वा धारण, पालन और जानने को समर्थ नहीं हो सकता[१६]"। अर्थात् परमेश्वर ही संसार का पालन, धारण करता है और वही जगत् निर्माता है।

अध्याय के अन्तिम मन्त्र में स्पष्ट किया गया है कि मनुष्यों को विद्वानों का अनुकरण करना चाहिये "जैसे विद्वान् लोग ईश्वर में प्रीति, संसार में यज्ञ के अनुष्ठान को करते हैं, वैसा ही सब मनुष्यों को करना उचित है"।[१७]

**टिप्पणी :-**

१. *इमाः देवीः आपः जुषस्व* ----- (४-१ दया. भाष्य)
२. *आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु* ----- (४-२ दया. भाष्य)
३. *आ वो देवास ई महे वामं प्रयत्यध्वरे* ---- (४-५ दया. भाष्य)
४. *स्वाहा यज्ञं मनसः* ---- *वातादारभे स्वाहा।* (४-६)
५. *आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये* ------- *द्रविणा विधेम स्वाहा।* (४-७)
६. *यजुर्वेद* (४-९ एवं १०)
७. *तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे* ----- *वैश्वदेवमसि।* (४-१८ दया. भाष्य)
८. *अनु त्वा माता मन्यतामनु* ----- *सोमसखा पुनरेहि।* (४-२० दया. भाष्य)
९. *आदित्यास्त्वा* ------ *तो तो रायः* (४-२२)
१०. *सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्* -----
११. *समख्ये देव्या धिया* ------ *तव देवि संदृशि* ---- (४-२३)
१२. *अभि त्यं देवं* ----- *अनुप्राणिहि॥* (४-२५)
१३. *शुक्रं त्वा शुक्रेण* ----- *पुषेयम्।* (४-२६ दया. भाष्य)
१४. *मित्रो न एहि* ---- *मा वो दभन्* (४-२७)
१५. *भद्रो मेऽसि प्रच्यवस्व भुवस्पते* ---- (यजु. ४-३४ दया. भाष्य)
१६. *वरुणस्योत्तम्भनमसि* ----- (यजु. ४-३६ दया. भाष्य)
१७. *या ते धामानि द्रविणा* ----- *सोम दुर्य्यान्* (४-३७ दया. भाष्य)

# अध्याय - ५

**विषय विवेचन :-** पंचम अध्याय में ४३ मन्त्र हैं। इस अध्याय में किन विषयों का वर्णन है इसका वर्णन करते हुए ऋषि ने लिखा है कि "यज्ञ अनुष्ठान --- परमात्मा की प्रार्थना--- अग्नि आदि पदार्थो से यज्ञ की सिद्धि, सब विद्या निमित्त वाणी या व्याख्यान, पढ़ना-पढ़ाना,--- योगाभ्यास का लक्षण, सृष्टि की उत्पत्ति, ईश्वर और सूर्य के कर्म --- प्राण और अपान की क्रिया का निरूपण सृष्टि से उपकार लेना,--- सभाध्यक्ष के गुणों का कहना,--- विद्वानों का वर्ताव और उनके लक्षण, शूरवीरों के गुण--- ईश्वर की उपासना करने वाले के गुणों का प्रकाश, सब बन्धन से छूटना, परस्पर की चर्चा, दुष्टों से छूटने का प्रकार इत्यादि विषयों का उपदेश दिया गया है।"

**यज्ञ एवं विद्वान् :-** प्रथम मन्त्र में यज्ञ के प्रयोजन का वर्णन करते हुए लिखा है कि यज्ञ वायु की शुद्धि के लिये है। यजमान के लिये सुखकारक है। यज्ञ (वृषणौ) वर्षा कराने वाला है, जीवन में सुख का साधन है। ऐसा बहुत से शास्त्रों में (पुरूरवः) वर्णन किया गया है यह उपदेश दूसरे मन्त्र में दिया है। यजमान को किसी प्रकार की पीड़ा न हो, यज्ञ करने कराने वाले विद्वान् समान विचार और ज्ञान विज्ञान युक्त तथा पाप से रहित, पवित्र मन वाले होने चाहियें, यह सन्देश तीसरे मन्त्र में दिया गया है। इसके पश्चात् विद्वान् सब प्रकार की हिंसा करने वालों से रहित, अग्नि विद्या में निपुण, वेदादि शास्त्रों के शब्द-अर्थ तथा इनके सम्बन्ध को जानने वाला, प्रमाद रहित, सुखकारी, अग्नि के स्थूल (कार्य) रूप और सूक्ष्म (कारण) रूप को जानने वाला होता है। संसार के कल्याण के लिये अग्नि विद्या का उपयोग करता है। परमात्मा से प्रार्थना किस लिये करनी चाहिये इसका उपदेश देते हुए मन्त्र में लिखा है कि (आपतये) सब प्रकार से स्वामी होने, (परिपतये), सब ओर से रक्षा (शाक्वराय), सब सामर्थ्य की प्राप्ति हो इसलिये मनुष्य को परमात्मा की प्रार्थना करनी चाहिये। मनुष्य समर्थ और शक्तिशाली होकर दूसरों की रक्षा करे और रक्षा करता हुआ कभी अहंकार से ग्रस्त न हो, इसलिये परमेश्वर से प्रार्थना करने का उपदेश वेद में दिया गया है।

**सुख के साधन :-** परमात्मा सत्य-धर्म-न्याय आदि नियमों का पालन करने वाला, व्रतों का स्वामी (व्रतपति) है। इसलिये उससे प्रार्थना करते हुए सत्य-न्याय-ब्रह्मचर्य आदि व्रतों (नियमों) से युक्त मानव जीवन होना चाहिये यह सन्देश वेद मन्त्र में दिया गया है। परमेश्वर की उपासना और सत्यवादी विद्वानों का सत्संग कर उनका सत्कार करता हुआ, मनुष्य सत्य न्यायादि व्रतों का पालन करता हुआ, स्वस्ति अर्थात् कल्याण के मार्ग पर चलता रहे। पदार्थ विद्या में विद्युत् के स्थूल और सूक्ष्म रूप को जानने का सदा प्रयत्न करे। इसके पश्चात् अगले मन्त्र में वाणी के तीन भेदों (१. विद्या से सुंस्कारित २. सत्य भाषणयुक्त ३. मधुर गुणयुक्त) का वर्णन किया गया है। मनुष्य को परमात्मा की उपासना में संलग्न होकर और विद्वानों का सत्संग करके स्वयं सुखी रहना चाहिये और दूसरों को भी सुख देना चाहिये, यह सुन्दर उपदेश वेद मन्त्र में दिया गया है।

**सर्वशक्तिमान् परमात्मा :-** परमात्मा ने प्रकाश करने वाले सूर्य को, प्रकाश रहित पृथिवी को तथा सूक्ष्म और अदृश्य परमाणुओं की रचना करके सब जगत् को धारण कर रहा हैं[१०]। अगले मन्त्र में स्पष्ट किया गया है कि सूर्य पृथ्वी को अपनी आकर्षण शक्ति से धारण कर रहा है और परमात्मा ने अपने सामर्थ्य से सूर्य-मंगल-बुध आदि सभी ग्रह-उपग्रहों और लोक लोकान्तरों को धारण कर रखा हैं[११]। इन सभी लोक-लोकान्तरों और ग्रह-उपग्रहों का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य वैज्ञानिक उन्नति करे अर्थात् भौतिक सुखों को प्राप्त करना चाहिये, यह भी वेद में स्पष्ट किया गया है। भौतिक सुख ही नहीं अपितु आध्यात्मिक सुख भी पृथिवी-सूर्य-चन्द्रादि तथा सूक्ष्म परमाणुओं को बनाने और धारण करने वाले परमात्मा को जानकर प्राप्त कर सकता हैं[११]।

परमेश्वर की सर्व शक्तिमत्ता का वर्णन एक मन्त्र का भावार्थ लिखकर ऋषि ने स्पष्ट किया कि "जैसे सिंह अपने पराक्रम से अपनी इच्छा के समान अन्य पशुओं का नियम करता फिरता है वैसे जगदीश्वर अपने पराक्रम से सब लोगों का नियम हित करता है[१२]। अर्थात् परमात्मा सभी प्राणियों को अपने नियमों में रखता है, उसकी आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता है क्योंकि वह सर्व शक्तिमान् है।"

**श्रेष्ठजन कर्तव्य :-** साधारण मनुष्यों को विद्वानों के द्वारा किये जाने वाले श्रेष्ठ कार्यो का अनुसरण करना चाहिये यह भी वेद में स्पष्ट किया हैं[१३]। मनुष्य को विद्वानों का ही अनुकरण करना चाहिये मूर्खों का नहीं यह संकेत अगले मन्त्र में दिया है। विद्वान् को उपदेश देते हुए लिखा है कि जैसे सूर्य अपने प्रकाश से चोर आदि प्राणियों को भय दिखा कर अन्य प्राणियों को सुखी करता है वैसे ही विद्वान् मनुष्य अपने ज्ञान के प्रकाश से मनुष्यों के आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं को नष्ट करके साधारण मनुष्यों को सुखी करें[१४]। मनुष्य को शरीर और आत्मा दोनों को ही सुदृढ़ करना चाहिये अर्थात् शारीरिक आत्मिक दोनों की ही उन्नति करना चाहिये तभी व्यक्ति सांसारिक जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है यह स्पष्ट किया हैं[१५]।

**यजमान और यजमान पत्नी :-** यज्ञ की प्रशंसा का वर्णन करते हुए वेद में लिखा है जो यजमान यज्ञ करने का दृढ़ संकल्प वाला होता है, विघ्न और बाधाएं उसकी यज्ञीय भावना में विघ्न नहीं डाल सकती हैं। जो घृत और हवि (हवन सामग्री) से पृथ्वी और द्युलोक के सुगन्धित और परिपूर्ण करता है इसलिये यजमान को श्रद्धा भक्ति से पूरे निश्चय के साथ यज्ञ करना चाहिये। यजमान पत्नी को भी यजमान का पूरा साथ देना चाहिये और दृढ़ संकल्प करके उसे भी यज्ञ कार्य सम्पन्न करना चाहियें[१६]।

**अनादितत्व :-** राजा या राष्ट्र का नियन्ता कैसा हो यह सन्देश देते हुए वेद में लिखा है कि राजा या राज्य सभा का अध्यक्ष उत्तम गुणों से युक्त तथा श्रेष्ठ कर्मो को करने वाला होना चाहिये। परमेश्वर जैसे ऐश्वर्य प्रदाता है वैसा ही ऐश्वर्य देने वाला सभाध्यक्ष होना चाहियें[१७]। यदि कोई मनुष्य विद्वान् का स्वागत सत्कार नहीं करेगा तो वह सुखों से वंचित हो जायेगा। अतः विद्वानों का स्वागत-सत्कार अवश्य करना चाहियें[१८]। यह उपदेश देकर आगे लिखा संसार में ईश्वर-जीव और प्रकृति ये तीन तत्व

अनादि हैं। जो अनादि होता है अर्थात् जिस का प्रारम्भ नहीं होता है उसका विनाश-अन्त भी नहीं होता है इसलिये उन्हें अविनाशी कहा गया है[१९]। परमेश्वर की न्याय व्यवस्था का उल्लेख करते हुए वेद में स्पष्ट किया है कि परमात्मा जीवों को उनके कर्मों का फल सुख दुःखादि देता है क्योंकि वह सभी जीवों के कर्मों को जानता है इसलिये पाप से दूर होने और सत्कर्मों को करने की या सुपथ पर चलने की प्रेरणा देने की प्रार्थना की गयी है[२०]।

**मनुष्य के सत्कर्म :-** परमेश्वर की उपासना न करने वाला व्यक्ति सफलता नहीं प्राप्त कर सकता है[२१]। अगले मन्त्र में मनुष्यों को उपदेश देते हुए लिखा है कि "अप्राप्त ऐश्वर्य को प्राप्त करना, प्राप्त ऐश्वर्य की रक्षा करना और उन्नति करना, धार्मिक मनुष्यों का सत्संग करना, धर्म का अनुष्ठान तथा सज्जनों का स्वागत सत्कार करना चाहिये[२२]। अपने समान ही सुख दुःख दूसरों को होता है यह मनुष्य को समझना चाहिये[२३]। विद्वान् को सदा मनुष्यों के सुख के लिये प्रयत्नशील होना चाहिये[२४]। मनुष्य को दुर्जनों का संग छोड़ देना चाहिये और दुर्जनों जैसा दुष्ट व्यवहार भी छोड़ देना चाहिये। अन्तिम मन्त्र में लिखा है कि "इस संसार में मनुष्य को सब प्रकार से अपने कामों की उन्नति को नही छोड़ना चाहिये"। यह सुन्दर विश्लेषण इस अध्याय में किया गया है।

**टिप्पणी :-**

१. *भवतं न समनसौ सचेत सावरेपसौ ----* (५-३)
२. *अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट -----* (५-४)
३. *आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि --- स्विते मा धाः* (५-५)
४. *अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा ---- तपस्तपस्यति* (५-६)
५. *यजुर्वेद* (५-७)
६. *यजुर्वेद* (५-८)
७. *यजुर्वेद* (५-८)
८. *युञ्जते मन उत युञ्जते धियो ---- परिष्टुति स्वाहा* (यजु ५-१४)
९. *इदं विष्णु र्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् -----* (यजु. ५-१५)
१०. *यजुर्वेद अध्याय* (५-१६ और १७ मन्त्र)
११. *विष्णो र्नु कं वीर्याणि ---- विष्णवे त्व* (यजु. ५-१८)
१२. *प्र तद् विष्णु स्तवते वीर्य्येण ---- भुवनानि विश्वा* (यजु. ५-२०)
१३. *देवस्य त्वा सवितुः ----- वाचं वद* (५-२२)
१४. *स्वराडसि सपत्नहा ----- अमित्रहा* (यजु ५-२४)
१५. *रक्षोहणो वो बलगहन ----- वैष्णवा स्थ* (यजु ५-२५)
१६. *ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानो ---- विश्वजनस्य छाया* (५-२८)
१७. *यजुर्वेद ५ अध्याय* (मन्त्र २९-३०)
१८. *यजुर्वेद* (५-३१)
१९. *समुद्रोऽसि विश्वव्यचा ----- भूयात्* (५-३३)
२०. *अग्ने नय सुपथा ---- नम उक्तिं विधेम* (५-३६)
२१. *यजुर्वेद* (५-३१)
२२. *देव सवितरेष --- पाशान्मुच्ये* (५-३९)
२३. *यजुर्वेद* (५-४०)
२४. *यजुर्वेद* (५-४१)
२५. *यजुर्वेद* (५-४२)
२६. *यजुर्वेद* (५-४३)

# अध्याय – ६

**विषय विवेचन :–** इस अध्याय में ३७ मन्त्र हैं। इस अध्याय में विद्यमान विषयों का उल्लेख करते हुए ऋषि ने अपने भाष्य में लिखा है कि ''इस अध्याय में ----शिक्षा, राज्य का कृत्य, प्रजा को राजा का आश्रय, --- राजा प्रजा का आपस में कृत्य, गुरु को ---शिष्य को शिक्षा करना, यज्ञ का अनुष्ठान, विद्वानों के लक्षण, --- रण में योद्धा का वर्णन, --- राज्य प्रबन्ध का कारण, --- योग्य सभापति का लक्षण --- प्रजा सुख के लिये सभापति के कर्तव्य कामों का अनुष्ठान, स्त्री-पुरुषों का परस्पर बर्ताव, माता पिता के प्रति सन्तानों का काम और सभापति (राजा) के प्रति प्रजाजनों का उपदेश'' --- इत्यादि विषयों का वर्णन किया गया है।

**राजा और परमात्मा :–** प्रथम मन्त्र है (पितृषदनम् असि) की व्याख्या करते हुए लिखा है कि हे सभाध्यक्ष ! जैसे ''तू विद्वानों के घर के समान है, पिता सदृश सब प्रजा को पाला कर'' अर्थात् जैसे पिता अपने पुत्र-पुत्रियों का भरण, पोषण, पालन और रक्षा करता है वैसे ही राजा भी प्रजा की रक्षा करे। यदि मनुष्य परमात्मा को प्राप्त करना चाहता है तो उसे परमात्मा की न्याय व्यवस्था, परोपकार, प्राणियों के कल्याणार्थ सृष्टि की रचनादि कर्मों को देखकर दूसरों का उपकार करना, दूसरों के साथ सत्य, न्याय और दया आदि का व्यवहार करना चाहिये। अर्थात् परमात्मा के कर्मों को देखकर उसके समान कर्म करने वाला व्यक्ति परमात्मा को प्राप्त करता है। इससे अगले मन्त्र में पुनः स्पष्ट निर्देश दिया है कि जो मनुष्य प्रत्येक क्षण परमात्मा का अनुभव करते हैं उनकी पाप करने की प्रवृत्ति नष्ट हो जाती हैं, वे शुद्ध पवित्र हो जाते हैं ऐसे लोग परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं। राजा के कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए ऋषि ने मन्त्र का भावार्थ लिखा है कि ''राजा प्रजाओं की रक्षा करने के लिये सिंह --- दुष्ट जीव तथा डाकू चोर --- आदि दुष्ट जनों को दण्ड से वश में कर अपनी प्रजा को यथायोग्य धर्म में प्रवृत्त करें''। अर्थात् चोर-डाकू-लुटेरे आदि दुष्ट मनुष्यों से तथा सिंह-सर्प-व्याघ्रादि दुष्ट प्राणियों से प्रजा की रक्षा राजा को सुरक्षित रखना चाहिये।

**यज्ञ से लाभ :–** ईश्वर और राजा का वर्णन करने के बाद सन्तान को शिक्षित करना माता-पिता और आचार्य का कर्तव्य है यह वर्णन दो मन्त्रों में करके यज्ञ की विशेषता का उल्लेख करते हुए अगले मन्त्र के भावार्थ में लिखा हैं कि ''जो यज्ञ में दी हुई आहुति हैं वे सूर्य तक पहुँचती हैं। अर्थात् सूर्य की आकर्पण शक्ति से परमाणु रूप होकर सब पदार्थ पृथिवी के ऊपर आकाश में रहते हैं, उसी से पृथिवी का जल ऊपर खींचकर वर्षा होती है उस वर्षा से अन्न और अन्न से सब जीवों को सुख होता है''। यज्ञ करने से किस प्रकार वर्षा होती है इसका संकेत इस मन्त्र में दिया गया है। यज्ञ के लिये घृतादि पदार्थों की आवश्यकता होती है, घृत प्राप्त करने के लिये मनुष्य को गायादि पशुओं का पालन करना चाहिये, यह वर्णन करते हुए मन्त्र के भावार्थ में लिखा है कि ''यज्ञ के लिये घृत आदि पदार्थ चाहने वाले मनुष्यों को गाय आदि पशु रखने चाहियें''।

**धर्म आचरण और शिष्य का निर्माण :-** यज्ञ से होने वाले सुख का वर्णन करने के पश्चात् मनुष्य को धर्म का आचरण करने में छल-कपट आदि नहीं करना चाहिये, इसका उपदेश देते हुए वेद में लिखा है कि "किसी मनुष्य को कुटिलगामी सर्प आदि दुष्ट जीवों के समान धर्म मार्ग में कुटिल न होना चाहियें किन्तु सर्वदा सरल भाव से ही रहना चाहिये"। गुरुजनों को अपने शिष्यों का निर्माण करना चाहिये, इसका वर्णन अगले दो मन्त्रों में किया है। **वाचं ते शुन्धामि** (यजु. ६-१४) मन्त्र द्वारा गुरु शिष्य की वाणी को शुद्ध करता है अर्थात् स्पष्ट उच्चारण करने की शिक्षा देकर वाणी को शुद्ध पवित्र करता है। शिष्य की वाणी ही नहीं अपितु नेत्र (आंख)-श्रोत्र (कान)-घ्राण (नाक) आदि इन्द्रियों को पवित्र करता है। शिष्य की ज्ञान और कर्मेन्द्रियाँ ही नहीं अपितु उसका मन भी शुद्ध पवित्र हो यह उपदेश वेद मन्त्र में दिया है[९]।

**युद्ध एवं योद्धा :-** गुरु शिष्यों के चरित्र का निर्माण करे, उन्हें शिक्षा दे तथा शिष्य (छात्र) भी गुरुजनों से अपने जीवन निर्माण के विषय में उनसे प्रार्थना करते रहें (यजु. ६-१७) यह विवेचन करने के पश्चात् योद्धा का युद्ध क्षेत्र में क्या कर्तव्य है ? इसका वर्णन करते हुए मन्त्र के भावार्थ में ऋषि ने लिखा है कि "मनुष्यों को चाहिये कि अपने--- शत्रुओं को मारकर संग्राम जीतें"। "सेनाध्यक्षों को उचित है कि अपनी-अपनी सेना के वीरों को अत्यन्त पुष्टकर युद्ध के समय --- युद्ध कर्मों से --- सब प्रकार से शत्रुओं को जीतकर न्याय से प्रजा पालन करें"। "सेनापति --- संग्राम में विचरता हुआ --- शत्रुओं को जीते"। अर्थात् युद्ध क्षेत्र में सेनापति अपने सैनिकों को इस प्रकार व्यवस्थित रूप से खड़ा करे और उन्हें शिक्षित करे जिससे वह शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकें।

**व्यापार तथा गृहस्थ जीवन :-** युद्ध के मैदान में सैनिक शत्रुओं को जीतने में सफल हो अर्थात् क्षात्र धर्म का वर्णन करने के पश्चात् वैश्य (व्यापारी) के कर्तव्यों का विवेचन अगले वेदमन्त्र का भावार्थ करते हुए ऋषि ने लिखा है[१०] कि "धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-राज्य और व्यापार चाहने वाले पुरुष भूमियान-जलयान और --- विमानादि --- को बनाकर --- धन और राज्य का उपार्जन करें"। अर्थात् आवागमन के विविध साधनों द्वारा देश-विदेश में जाकर धनोपार्जन व्यापारी को करना चाहिये और राजा का कर्तव्य है वह व्यापारी वर्ग का ही नहीं किन्तु प्रत्येक मनुष्य अर्थात् प्रजा के धन की रक्षा करे यह उपदेश अगले मन्त्र में दिया है[११]।

गृहस्थ आश्रम में सदाचारी स्त्री और पुरुष ही प्रवेश करे यह उपदेश भी वेद में दिया है। मन्त्र[१२] का भावार्थ करते हुए ऋषि ने लिखा है कि "ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करने वाली कन्याओं को अविवाहित ब्रह्मचारी और अपने गुण कर्म स्वभाव युक्त पुरुषों के साथ विवाह करने की योग्यता है"। समान गुण, कर्म, स्वभाव और योग्यता वाले स्त्री पुरुष गृहस्थी बनेंगे तो परस्पर एक दूसरे के सुख दुःख आदि का ध्यान रखेंगे और सन्तान भी श्रेष्ठ होगी।

**राजा का कर्तव्य :-** सभी मनुष्य मिलकर राजा का निर्वाचन करें यह उपदेश वेद में दिया गया है[१३]। तथा प्रजा कर (टैक्स) के रूप में अपनी आय का कुछ अंश राजा को दिया करें और राजा उस धन का सदुपयोग प्रजा के कल्याण के लिये किया करे यह विवेचन भी इस

अध्याय के एक मन्त्र में किया गया है[१४]। राजा निर्वाचित होने पर स्वच्छन्द होकर अकेला निर्णय न करे अपितु राजसभा के सदस्यों की सम्मति से या बहुमत से निर्णय किया करे यह सन्देश भी वेद में दिया है। मन्त्र का भावार्थ है[१५] कि "राज्य का प्रबन्ध सभाधीन ही होने के योग्य है, जिससे प्रजाजन, राजसेवक और राजपुरुष प्रजा की सेवा करने हारे अपने-अपने कामों में प्रवृत्त होके सब प्रकार एक दूसरे को आनन्दित करते रहें"। राजा अपने राज्य की प्रजा के कल्याण और उन्नति के लिये सदा प्रयत्नशील रहे[१६] यह सन्देश राजा को दिया गया है। इस अध्याय के अन्तिम मन्त्र[१७] के भावार्थ में राजा के गुणों का वर्णन करते हुए ऋषि ने लिखा है कि "जैसे ईश्वर पक्षपात रहित है वैसे सभापति राज्य धर्मानुवर्ती राजा होकर प्रशंसनीय की प्रशंसा, निन्दनीय की निन्दा, दुष्ट को दण्ड, श्रेष्ठ की रक्षा करके सबका अभीष्ट करे"। अर्थात् राजा पक्षपात रहित होकर राज्य संचालन और प्रजा का पालन करे, अपराधी को दण्ड, सज्जनों की रक्षा किया करे। जैसे परमात्मा अशुभ (पाप) कर्म करने वालों को दुःख और पुण्यात्माओं को सुख देता है वैसे ही राजा किया करे।

अन्तिम मन्त्र से पहले मन्त्र में माता पिता को उपदेश दिया गया है कि "माता और पिता को योग्य है कि अपनी सन्तानों को विद्यादि अच्छे-अच्छे गुणों में प्रवृत्त कराकर --- शरीर की रक्षा किया करें --- गुण सीखें --- माता पिता की सब प्रकार से सेवा करें" अर्थात् सन्तान सद्गुण सम्पन्न हो और वह माता पिता की सेवा करके उनका आशीर्वाद प्राप्त कर सके यह उपदेश वेद में दिया है[१८]।

**टिप्पणी :-**

१. *विष्णोः कर्माणि पश्यत, यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा* (६-४)
२. *तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः* --- (यजुर्वेद ६-५)
३. *परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो ---- आरण्यस्त पशुः* (यजु. ६-६)
४. *यजुर्वेद* (अध्याय ६ मन्त्र ८ और ९)
५. *अपां पेरुरस्यापो देवीः ---- आशिषा* (६-१०)
६. *घृतेनाक्तौ पशून् --- देवेभ्यः स्वाहा* (६-११)
७. *माहिर्भू र्मा पृदाकू र्नमस्त ---- पथ्या अनु* (६-१२)
८. *मनस्त आप्यायताम् वाक् त आप्यायताम्* ---- (६-१५).
९. *सं ते मनो मनसा सं प्राणः प्राणेन* ---- (यजु. ६-१८) *घृतं घृतपावानः पिबत वसाम्* ---- (६-१९) *एन्द्रः प्राणो अंगे* ------ (६-२०)
१०. *समुद्रं गच्छ स्वाहा* ---- (यजु. ६-२१)
११. *मापो मौष धीर्हिं ---- वयं द्विष्मः* (६-२२)
१२. *अग्ने वोऽपन्न गृहस्य* ---- (६-२४)
१३. *देवी रापो अपां नपाद्यो व ---- भाग स्थ स्वाहा* (६-२७)
१४. *देवस्य त्वा सवितुः ---- तर्पयत मा* (६-३०)
१५. *मनो मे तर्पयत वाचं मे तर्पयत* ---- (६-३१)
१६. *यत्ते सोम दिवि ज्योतिः* ---- (६-३२)
१७. *त्वमङ्ग प्रशंसिषो देवः* ---- (६-३७)
१८. *प्राग अपागुदगधराक्* ---- (७-३६)

# अध्याय - ७

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में ४८ मन्त्र हैं। इस अध्याय में विद्यमान विषयों का वर्णन करते हुए ऋषि दयानन्द ने अपने भाष्य में लिखा है कि ''बाहर भीतर का व्यवहार, मनुष्यों का परस्पर बर्ताव, आत्मा को कर्म, --- मन की प्रवृत्ति --- योगाभ्यास --- योग का लक्षण, --- अन्तःकरण की शुद्धि, योगाभ्यासी का लक्षण, गुरु शिष्य का परस्पर व्यवहार, --- विद्वानों का कर्तव्य कर्म, ईश्वर के उपासक को उपदेश --- ब्रह्मचर्य सेवन की रीति, --- ईश्वर का जीवों के प्रति उपदेश'' -इत्यादि विषयों का वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

**श्रेष्ठ व्यवहार :-** प्रथम मन्त्र के भावार्थ में वाणी के प्रयोग के विषय में लिखा है कि ''सब जीवों को योग्य है कि---विद्वानों के संग से विद्यादि उत्तम गुणों में निष्णात होकर सत्यवाणी के बोलनेवाले हों''। मनुष्यों को सदा परस्पर सत्य का व्यवहार करना चाहिये। इतना ही नहीं अगले मन्त्र में अन्य व्यवहार के विषय में उपदेश दिया है कि ''मनुष्य जैसे अपने सुख के लिये अन्न जलादि पदार्थों का सम्पादन करे वैसे ही औरों के लिये भी किया करे और जैसे कोई मनुष्य अपनी प्रशंसा की इच्छा करे वैसे औरों की आप भी किया करें'' अर्थात् जैसा अच्छा व्यवहार मनुष्य अपने लिये दूसरों से चाहता है वैसा ही अच्छा व्यवहार उसे दूसरों के साथ करना चाहिये। यह सन्देश वेद मन्त्रों से मिल रहा है।

**योगी और उसका आचरण :-** योगाभ्यास करने वाले व्यक्ति को यम नियमों का पालन करते हुए अपने अन्तःकरण को शुद्ध-पवित्र करना चाहिये यह सन्देश वेद मन्त्र (७-४) में दिया है। योगाभ्यास न करने वाला व्यक्ति संसार की यथार्थता और परमात्मा के स्वरूप को नहीं ज़ान सकता है (७-५) श्रेष्ठ आचरण की महत्ता का सन्देश वेद मन्त्र में दिया गया हैं जिसका भावार्थ करते हुए ऋषि ने लखा है कि ''मनुष्य जब तक श्रेष्ठाचार करने वाला नहीं होता तब तक ईश्वर भी उसको स्वीकार नहीं करता --- तब तक उसका आत्मबल पूरा - नहीं हो सकता --- तब तक उसको सुख भी नहीं होता''। वेद मन्त्र में स्पष्ट निर्देश है कि श्रेष्ठ आचरण के बिना मनुष्य सुख, आत्मिक बल और परमात्मा को नहीं प्राप्त करता है। इसलिये मनुष्य को सदाचार का पालन करना चाहिये। श्रेष्ठ आचरण का ही विवेचन अगले मन्त्र (७-७) में भी किया है कि जो व्यक्ति सभी को सुख देता है अर्थात् किसी को कष्ट नहीं देता, घृणा, ईर्ष्या, द्वेषादि किसी से नहीं करता है वही व्यक्ति योगाभ्यास करने में सफल हो सकता है अर्थात् योगाभ्यासी को अहिंसा-सत्य-अस्तेय (चोरी न करना) आदि यम और नियमों का पालन करना चाहिये। योग के विषय में अगले कुछ मन्त्रों में विस्तृत उपदेश दिया गया है।

**राजा (सभापति) का उत्तरदायित्व :-** योग विषयक वर्णन के पश्चात् राजा के विषय में उपदेश दिया गया है। राजा के कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए वेद

मन्त्र (७-१६) के भावार्थ में ऋषि ने लिखा है कि ''सभाध्यक्ष (राजा) को चाहिये कि---श्रेष्ठ व्यवहार से सज्जन पुरुषों को आह्लाद देवें''। राजा अपने राज्य की प्रजा की रक्षा करते रहें (७-१७) यह उपदेश भी वेद मन्त्र में दिया है। प्रजा की रक्षा के विषय में निर्देश देते हुए लिखा है कि ''न्यायाधीश राजा को चाहिये कि जैसे पुरोहित धर्म से यज्ञ करने वाले सत्पुरुष यजमान की रक्षा करता है, वैसे प्रजा का निरन्तर पालन करे''। अर्थात् राजा प्रजा की वैसी ही रक्षा करे जैसे पुरोहित अपने यजमान की रक्षा करता है। वेद मन्त्र के भावार्थ से यह भी स्पष्ट होता है कि पुरोहित को अपने यजमान की दुर्गुण दुर्व्यसनों से रक्षा करनी चाहिये, हमेशा उसे सद्गुण-सत्कर्म करने की प्रेरणा देकर उन्नति करने के लिये प्रेरित करना चाहिये। राजा को अपने राज्य की उन्नति के लिये विशेष प्रयत्न करना चाहिये। इस निमित्त राज्य के विद्वानों का भी सहयोग लेना चाहिये यह संकेत भी वेदमन्त्र (७-२०) में दिया है। प्रजा की रक्षा के लिये राजा सेना में शस्त्रास्त्र विद्या में निपुण वीर-बहादुर व्यक्तियों को नियुक्त करें। सेनापति इन सब गुणों में श्रेष्ठ एवं योग्य होना चाहिये (७-२२) यह भी उल्लेख किया गया है।

**योग का महत्व :-** राजा के गुण-कर्तव्य-योग्यता आदि का वर्णन करने के पश्चात् परमात्मा का वर्णन (२५-२६) मन्त्र में करके यज्ञ के विषय में लिखा है कि यज्ञ से जल-वायु (पर्यावरण) की शुद्धि होती है, रोगों की निवृत्ति होती है, मनुष्यों को सुख प्राप्त होता है, इस यज्ञ की अनिवार्यता का उल्लेख करते हुए ऋषि ने लिखा है कि ''सब मनुष्यों को इस यज्ञ का सदा सेवन करना चाहिये'' (७-२६) यज्ञ से सभी को लाभ होता है (७-२७) यह वर्णन करके पुनः योग के महत्व का वर्णन करते हुए लिखा है कि ''योग विद्या के विना कोई भी मनुष्य पूर्ण विद्यावान् नहीं हो सकता और न पूर्ण विद्या के विना अपने स्वरूप और परमात्मा का ज्ञान उसे होता है और न इसके विना कोई न्यायाधीश सत्पुरुषों के समान प्रजा की रक्षा कर सकता है। इसलिये सब मनुष्यों को उचित है कि इस योग विद्या का सेवन निरन्तर किया करें।'' अर्थात् योगाभ्यास से ही मनुष्य को अपना और परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान होता है ऐसा योगदर्शन में भी उल्लेख है।

**शिक्षण प्रक्रिया :-** योगाभ्यास के महत्व के विवेचन के पश्चात् कुछ मन्त्रों (२९-३२) में पुनः राज्य कार्यों का वर्णन करके शिक्षा के विषय में महत्वपूर्ण उपदेश दिया गया है। मन्त्र के भावार्थ में ऋषि ने लिखा है कि ''सब विद्वान् और विदुषी स्त्रियों की योग्यता है कि समस्त बालक और बालिकाओं के लिये विद्या दान करें।---- माता और पिता आठ-आठ वर्ष के पुत्र वा आठ-आठ वर्ष की कन्याओं को विद्याभ्यास ब्रह्मचर्य सेवन और अच्छी शिक्षा किये जाने के लिये विद्वान् और विदुषी स्त्रियों को सौंप दें।'' अर्थात् लड़कों के समान लड़कियों की शिक्षा होनी चाहिये, यह वेद से स्पष्ट हो रहा है। लड़कियों की स्त्रियाँ और लड़कों

को पुरुष शिक्षा दें, दोनों के विद्या स्थल (गुरुकुल) पृथक्-पृथक् हों, आठ वर्ष के बाद सन्तान को गुरुजनों के पास भेज देना चाहिये जहाँ उनकी शारीरिक-बौद्धिक और आत्मिक उन्नति हो सके, यह भी संकेत यहाँ दिया गया है। अध्ययन के विषय में अगले मन्त्र में यह निर्देश दिया है कि "विद्वान् लोगों को उचित है कि प्रतिदिन विद्यार्थियों को पढ़ावें और---उनकी परीक्षा भी प्रत्येक महीने में किया करें।" अर्थात् विद्यार्थियों को पढ़ाने के साथ-साथ उनकी परीक्षा भी गुरुजनों को लेते रहना चाहिये जिससे उनकी विद्या ग्रहण में रुचि और योग्यता के विषय में माता-पिता और गुरु को जानकारी रह सके।

**ईश्वर-कृपा :-** शिक्षण विषयक वर्णन करते हुए ही अगले मन्त्र के भावार्थ में ऋषि ने लिखा है कि "राजसभा के सभासद् भी वेदज्ञ विद्वानों की आज्ञा का उल्लंघन न करें" (७-३५) अर्थात् वेदों के विद्वान् राजधर्म के भी विशेष ज्ञाता होते हैं इसलिये राजा और राजसभा को सदस्यों को उनकी वेदसम्मत आज्ञाओं का पालन करना चाहिये। राजा को प्रजा की रक्षा करनी चाहिये। प्रजा की रक्षा और उसके पालन करने में राजा भी ईश्वर के विना सफल नहीं हो सकता है यह वर्णन करते हुए लिखा है कि "ईश्वर का आश्रय न करके कोई भी मनुष्य प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता।" जैसे ईश्वर जीवों को अपनी न्याय व्यवस्था से सुख देता है वैसे राजा भी प्रजा को सुख देना चाहिये यह भी इस मन्त्र में स्पष्ट किया है। रमात्मा को वेदमन्त्र (७-४१) में "जातवेदसम्" कहा है अर्थात् वह संसार के प्रत्येक पदार्थ को जानने वाला है, सभी पदार्थो में विद्यमान है। परमात्मा की उपासना से चित्र-विचित्र-अद्भुत आत्मिक बल (चित्रं देवानां---अनीकम् ७-४२) प्राप्त होता है। परमेश्वर से सुपथ-सत्पथ पर चलने के लिये प्रार्थना भी की गयी है। (अग्ने नय सुपथा--- ७-४३)

**चार प्रकार के योद्धा :-** युद्ध में सफलता प्राप्त करने के लिये वेद में उपदेश दिया है कि चार प्रकार के योद्धा होने चाहियें। जिसका उल्लेख भावार्थ करते हुए ऋषि ने किया है कि "युद्धकर्म में चार वीर अवश्य हों, उनमें से एक तो वैद्यक शास्त्र की क्रियाओं में चतुर सबकी रक्षा करने हारा वैद्य, दूसरा सब वीरों को हर्ष देने वाला उपदेशक, तीसरा शत्रुओं का अपमान करने हारा और चौथा शत्रुओं का विनाश करने वाला हो तब समस्त युद्ध की क्रिया प्रशंसनीय होती है।" अर्थात् युद्ध क्षेत्र में दुश्मन से लड़नेवाले सैनिक हों, उनके साथ उनके सहयोगी भी हों जो शत्रु के मनोबल को (अपमान करके) कमजोर करने वाले हों, सैनिकों को अपने व्याख्यान के द्वारा प्रेरणा देने वाले उपदेष्टा हों, और यदि युद्ध में कोई सैनिक घायल हो गया हो तो उनकी चिकित्सा करने वाले चिकित्सक भी सेना में होने चाहिये। यह सुन्दर विवेचन इस वेद मन्त्र में किया गया है।

**पुरुषार्थ और कामना :-** सेना में चार प्रकार के वीरों (योद्धाओं) का वर्णन करने के पश्चात् अगले मन्त्र में राजसभा-विद्यासभा-धर्मसभा इन तीन सभाओं का उल्लेख किया गया है (७-४५) उत्साहपूर्वक पुरुषार्थ करने वाला व्यक्ति हमेशा सफलता प्राप्त करता है इसलिये मनुष्य को सदा उत्साह से पुरुषार्थ परिश्रम करना चाहिये यह सन्देश भी वेदमन्त्र (७-४६) में दिया है। इसके पश्चात् पुत्र और पुत्रियों की शिक्षा का उल्लेख (७-४७) करके अन्तिम मन्त्र में स्पष्ट किया है कि जीवात्मा कर्म करता है परमात्मा जीवात्माओं को उनके किये हुए शुभाशुभ कर्मों का फल देता है[१०]। इस विषय में ऋषि ने मन्त्र के भावार्थ में लिखा है कि "इस संसार में कर्म करने वाले जीव और फल देने वाला ईश्वर है।" इसलिये मनुष्य को सदा शुभ कर्म करना चाहिये, शुभ कर्म ही नहीं अपितु शुभ कर्म करने की इच्छा (कामना) करनी चाहिये। इस विषय में ऋषि ने लिखा है कि "इस संसार में---- कामना (इच्छा) के विना कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता इसलिये धर्म की कामना करनी, अधर्म की नहीं क्योंकि वेदों को पढ़ना-पढ़ाना और वेदोक्त धर्म का आचरण करना आदि कामना-इच्छा के बिना कभी सिद्ध नहीं हो सकती--- इसलिये श्रेष्ठ वेदोक्त कामों की इच्छा करनी इतर दुष्ट कामों की नहीं (७-४८)" यह सन्देश वेद में दिया गया है।

**टिप्पणी :-**

१. *वाचस्पतये पवस्व* (७-१) *मधुमती नं इषस्कृधि ----* (७-२)
२. *स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्यः ------ उदानाय त्वा* (७-६)
३. *सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् --- अधिष्ठानमसि* (७-१८)
४. *आत्मने में वर्चोदा वर्चसे ----पवेथाम् ॥* (७-२८)
५. *तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्* (योगदर्शनम्)
६. *ओमासश्चणी धृतो विश्वे देवास आगतः ।------*(७-३३)
७. *विश्वे देवास आगत शृणुता----* (७-३४)
८. *महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा----महेन्द्राय त्वा* (७-३९)
९. *अयं नो अग्निः ---- जर्हृषाणः स्वाहा ॥* (७-४४)
१०. *कोऽदात् कस्मा अदात् ---- कामैतत्ते* (७-४८)

# अध्याय - ८

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में कौन ६३ मन्त्र हैं। इस अध्याय में कौन गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करे, उसकी योग्यता क्या हो ? तथा गृहस्थ का क्या धर्म है ? और राजा और प्रजा के कर्तव्यों का विवेचन किया गया है।

**स्वयंवर विवाह :-** वेदों में लड़कियों के वेदादि शास्त्रों को पढ़ने का, ब्रह्मचर्य पालन करने और अपने लिये योग्य जीवन साथी (पति) को चयन करने का अधिकार अर्थात् स्वयंवर विवाह का स्पष्ट निर्देश है। इस अध्याय के प्रथम मन्त्र के भावार्थ में ऋषि दयानन्द ने लिखा है कि "ब्रह्मचर्याश्रम सेवन की हुई युवती कन्याओं को ऐसी आकांक्षा अवश्य रखनी चाहिये कि अपने सदृश रूप, गुण, कर्म स्वभाव और विद्या वाला, अपने से अधिक बलयुक्त, अपनी इच्छा के योग्य अन्तःकरण से जिस पर विशेष प्रीति हो, ऐसे पति को स्वयंवर विधि से स्वीकार करके उसकी सेवा किया करे।" अर्थात् समान-गुण-कर्म स्वभाव और योग्यता वाले पति-पत्नी होने से गृहस्थ जीवन सुखमय होता है तथा योग्य सन्तान का निर्माण करके वे राष्ट्र को श्रेष्ठ नागरिक प्रदान करने में सफल रहते हैं। स्वयंवर विवाह के विषय में अन्य मन्त्र भी है। वर के चयन करने में कन्या (वधू) को सावधान करते हुए उपदेश दिया है कि "स्त्रियों को योग्य है कि जितेन्द्रिय पति का सेवन (स्वीकार) करें अन्य को नहीं।" अर्थात् कामी-भोगी-विलासी पुरुष के साथ विवाह करके स्त्री का जीवन दुःखदायी हो सकता है इसलिये वेद में परस्त्रीगामी पुरुष के साथ विवाह का निषेध किया है। विवाह से पहले वर-वधू को एक दूसरे की परीक्षा कर लेनी चाहिये यह भी संकेत वेदमन्त्र (८-९) में दिया गया है।

**गृहस्थ धर्म :-** गृहस्थ धर्म का वर्णन करते हुए उपदेश दिया गया है कि "विवाह करके स्त्री पुरुषों को चाहिये कि जिस-जिस काम से विद्या-बुद्धि-धन सुहृद्भाव और परोपकार बढ़े उस-उस कर्म का सेवन अवश्य किया करें।" इतना ही आगे उपदेश देते हुए लिखा है कि गृहस्थजन ईश्वर के अनुग्रह परम पुरुषार्थ और प्रशंसनीय बुद्धि से मंगलकारी गृहस्थाश्रमी होकर इस प्रकार का प्रयत्न करें कि जिससे तीनों अर्थात् भूत-भविष्यत् और वर्तमान काल में अत्यन्त सुखी हों। अर्थात् गृहस्थ जीवन में मनुष्य को पुरुषार्थ करके विद्या और धन की वृद्धि के साथ-साथ परोपकार, अतिथि सेवा तथा, ईश्वरोपासनादि के कार्य भी करते रहने चाहिये। जिससे मनुष्य सुखी रह सके, यह संकेत वेद में दिया है। गृहस्थ स्त्री पुरुष शरीर से स्वस्थ और मन से प्रसन्न रहें (८-१४) धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिये सदा प्रयत्नशील रहें (८-१६) गृहस्थियों को दुःखी व्यक्तियों के दुःख दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये, दान देना चाहिये (८-१७) माता-पिता-सास-ससुरादि के साथ सुख देने वाले कर्मों का सन्देश (८-१८) में दिया है। गृहस्थ आश्रम में पति-पत्नी के विविध कर्तव्यों का सुन्दर चित्रण इस अध्याय में किया गया है।

**गृहस्थ की योग्यता एवं महत्ता :-** शिक्षित व्यक्ति (स्त्री-पुरुष) गृहस्थ में प्रवेश करे यह अनेक वेद मन्त्रों में संकेत दिया है। इसी प्रसंग में वेद मन्त्र आया है कि जीवात्मा गर्भ में दश (चान्द्र) मास तक रहता है, उसके बाद गर्भ से बाहर आता है अर्थात् उसका जन्म होता है। जिस महिला को मासिक धर्म २७ या २८ दिन में आता है उसके गर्भ में शिशु २७० या २८० दिन रहता है उसके बाद शिशु का जन्म होता है। सन्तान विषयक स्पष्ट ज्ञान वेदों में विद्यमान है यह वेद मन्त्र से स्पष्ट होता है। जिन आदर्शों के विना गृहस्थाश्रम सुखदायी नहीं हो सकता उसका सन्देश देते हुए वेदमन्त्र में लिखा है कि "ब्रह्मचर्य-उत्तम शिक्षा-शरीर और आत्मा का बल, आरोग्य पुरुषार्थ, ऐश्वर्य, सज्जनों का संग, आलस्य का त्याग, यम-नियमों (का पालन) और उत्तम सहायक के विना किसी मनुष्य से गृहस्थाश्रम धारा नहीं जा सकता" अर्थात् गृहस्थ के लिये ये गुण आवश्यक हैं। इसके पश्चात् (८-३२) मन्त्र में पति-पत्नी की तुलना सूर्य और पृथिवी से की गयी है। अगले मन्त्र (८-३३) में गृहस्थाश्रम की महत्ता का वर्णन करते हुए लिखा है कि "गृहस्थाश्रम के आधीन सब आश्रम हैं" अर्थात् गृहस्थी ही ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी का भरण, पोषण और पालन करता है इसलिये ये तीनों आश्रम इसके आधीन-आश्रित हैं। गृहस्थ को ईश्वर की उपासना करनी चाहिये यह उपदेश (८-३६) मन्त्र में दिया है।

**राजा के भेद और कार्य :-** राजा के विषय में उपदेश देते हुए वेद में वर्णन है एक चक्रवर्ती (केन्द्रीय) और एक माण्डलिक (क्षेत्रीय) दो प्रकार के राजा होते हैं। अर्थात् एक राष्ट्रीय स्तर का और एक प्रान्तीय स्तर का राजा होता है जिसे आज कल की प्रचलित शासन व्यवस्था में "प्रधान मन्त्री या राष्ट्रपति" जो पूरे राष्ट्र का नियन्ता होता है तथा प्रत्येक प्रान्त का नियन्ता मुख्यमन्त्री या राज्यपाल शासक होता है। वेद में दोनों प्रकार के शासकों के गुणों का वर्णन करते हुए मन्त्र के भावार्थ में ऋषि ने लिखा है कि "ये दोनों प्रकार के राजाजन उत्तम-उत्तम न्याय, नम्रता, सुशीलता और वीरतादि गुणों से प्रजा की रक्षा अच्छे प्रकार करें।" अपने राज्य को विकसित और उन्नतिशील बनाये रखने के लिये प्रजा को विविध प्रकार के ज्ञान, विज्ञान और श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न करते रहें (८-३८) ज्ञान विज्ञान के बिना कोई भी राज्य भौतिक सुख सुविधाओं को नहीं प्राप्त कर सकता और बिना ज्ञान के परमात्मा की उपासना भी नहीं कर सकता है इस विषय में लिखा है कि "ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही परमेश्वरोपासना की अवधि है (८-४१)" इसलिये राजा-प्रजा सभी के लिये ईश्वरोपासना अनिवार्य है।

**पत्नी की योग्यता और महत्ता :-** पत्नी आयुर्वेद (चिकित्सा शास्त्र) की विशेष विदुषी होनी चाहिये किन-किन पदार्थों के खाने से शरीर पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है इसका उसको विशेष ज्ञान होना चाहिये जिससे वह स्वयं

तथा पति स्वास्थ्यवर्धक पदार्थों का ही भक्षण करे, ऐसा प्रबन्ध उसे करना चाहिये। इस विषय में वेदमन्त्र के भावार्थ में ऋषि ने लिखा है कि "विदुषी स्त्रियों को योग्य है कि अच्छी परीक्षा किये हुए पदार्थ को जैसे आप खाये वैसे ही अपने पति को भी खिलावे जिससे बुद्धि-बल और विद्या की वृद्धि हो और धनादि पदार्थों को भी बढ़ाती रहें।" पत्नी पाक विद्या में ही निष्णात न हो अपितु अर्थशास्त्र की भी विशेष ज्ञान रखने वाली हो जिससे परिवार की धन वृद्धि अर्थात् आर्थिक उन्नति करने वाली हो। पाक और अर्थशास्त्र की विदुषी ही पत्नी न हो अपितु वह धर्म में पूर्ण आस्था रखने वाली पत्नी होनी चाहिये जिससे उसका पति और सन्तान अधर्म की ओर अग्रसर न हो सकें यह सन्देश अगले मन्त्र (८-४३) में दिया है। मनुष्य का जीवन धार्मिक हो, धार्मिक आचरण और वातावरण को बनाये रखने में पत्नी का महत्वपूर्ण योगदान रहता है किन्तु यदि कोई पुरुष पत्नी के धार्मिक निर्देशों की उपेक्षा करके पाप कर्म में प्रवृत्त होता है और दूसरे प्राणियों को कष्ट देता है तो राजा का कर्तव्य है कि ऐसे पाप करने वाले व्यक्तियों को दण्ड दे, यह उपदेश (८-४४) मन्त्र में दिया है। अगले मन्त्रों (८-४५ और ४६) में राजा को परमेश्वर के समान पक्षपातरहित होकर न्याय करना चाहिये। गृहस्थ व्यक्ति को सदाचारी होना चाहिये क्योंकि सदाचार का पालन किये विना धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती हैं यह सन्देश भी वेदमन्त्र (८-४८) में दिया है।

**राजा और प्रजा :-** गृहस्थ धर्म का वर्णन करने के साथ-साथ राजा और प्रजा का परस्पर सम्बन्ध या व्यवहार कैसा होना चाहिये इसका वर्णन करते हुए वेद में लिखा है कि "जब तक राजपुरुष तथा प्रजापुरुष पिता और पुत्र के तुल्य परस्पर प्रीति और उपकार नहीं करते, तब तक निरन्तर सुख भी प्राप्त नहीं हो सकता।" अर्थात् राजा प्रजा को पुत्र के समान मानकर उनकी रक्षा तथा पालन किया करे और प्रजा भी राजा को पिता के समान अपना हितैषी समझें। धार्मिक राजा की आवश्यकता और महत्ता का वर्णन करते हुए मन्त्र के भावार्थ में लिखा है कि "जब तक सबकी रक्षा करने वाला धार्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो तब तक कोई भी मनुष्य विद्या और मोक्ष के साधनों का अनुष्ठान करके निर्विघ्नता से सुख पाने के योग्य नहीं हो सकता" प्रजा के पालन के साथ-साथ राजा शत्रुओं को पराजित करने के लिये सदा तत्पर रहे क्योंकि उसके बिना प्रजा पालन और प्रजा को सुख देने में सफलता नहीं मिल सकती, यह भी संकेत वेदमन्त्र (८-५३) में दिया है।

**वेदों का महत्व :-** मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन या पारिवारिक जीवन हो, अथवा ज्ञान विज्ञान-चिकित्सा या राजधर्म सभी विषयों को परमेश्वर ने वेदों के द्वारा मनुष्यों के लिये प्रस्तुत किया है। वेद विद्या के महत्व का उल्लेख करते हुए ऋषि ने मन्त्र के भावार्थ में लिखा है कि "जो ईश्वर वेद विद्या से अपने, सांसारिक जीवों और जगत् के गुण कर्म स्वभावों को प्रकाशित न करता तो किसी मनुष्य को विद्या वा

उक्त पदार्थो के ज्ञान के बिना निरन्तर सुख क्यों कर हो सकता है।'' अर्थात् वेदों के बिना सांसारिक पदार्थों की यथार्थता का ज्ञान नहीं हो सकता और यथार्थ ज्ञान के अभाव में सुख भी नहीं हो सकता हैं[१२]। ज्ञान-विज्ञान भी तर्क के बिना नहीं होता है तर्क की आवश्यकता का उल्लेख वेद (८-५६) में किया है।

**यज्ञ और पुरुषार्थ :-** ईश्वरीय ज्ञान वेद विद्या तथा वेदों में विद्यमान ज्ञान-विज्ञान के 'तर्क' के महत्व का उपदेश देने के पश्चात् यज्ञ की महत्ता का उल्लेख[१३] करते हुए लिखा है कि ''जो विद्वान् लोग परोपकार बुद्धि से विद्या का विस्तार करके सुगन्धि, पुष्टि, मधुरता और रोगनाशक गुणयुक्त पदार्थों का मेल करके अग्नि के बीच में उनका होम कर, शुद्ध वायु, वर्षा का जल वा औषधियों का सेवन करके शरीर को आरोग्य सम्पन्न करते हैं वे इस संसार में अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होते हैं अर्थात् यज्ञ से शरीर ही स्वस्थ नहीं होता अपितु जल-वायु-आदि भी शुद्ध होते हैं। यज्ञ के बिना गृहस्थ में सुख नहीं होता है (५९-६०) यह भी सन्देश दिया हैं। यज्ञ करके सुख देना चाहिये (८-६१) यह वर्णन करके अन्तिम मन्त्र[१४] में पुरुषार्थ का उल्लेख करते हुए लिखा है कि ''मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन को इकट्ठा कर, घोड़े आदि उत्तम पशुओं---वीरों को रखे---सदा पुरुषार्थ से गृहाश्रम की उन्नति करते रहें'' अर्थात् पुरुषार्थ करके गृहस्थ में उन्नति करके सुख प्राप्त किया जा सकता है यह सन्देश दिया गया है।

**टिप्पणी :-**

*१. उपयाम गृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा----दभन।* (८-१)
*२. कदाचन प्रयुच्छस्युभे नियासि जन्मनी---* (८-३)
*३. यज्ञो देवानां प्रत्येति --- त्वा॥* (८-४)
*४. वाममद्य सवितर्वाममु ---- वामभाजःस्याम॥* (८-६)
*५. एजतु दशमासो गर्भो जरायुणा सह----* (८-२८)
*६. मरुतो यस्य हि क्षये --- सुगोपातमो जनः* (८-३१)
*७. इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा तौ---* (८-३७)
*८. आजिघ्र कलशं मह्या त्वा --- विशताद् रयिः॥* (८-४२)
*९. इह रतिरिह रमध्वमिह ---- दीधरत् स्वाहा॥* (८-५१)
*१०. सत्रस्य ऋद्धिरस्यगन्म ----स्वर्ज्योतिः* (८-५२)
*११. परमेष्ठ्यभिधीतः ----दीक्षायां पूषा सोम क्रयण्याम्॥* (८-५४)
*१२. ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः*
*१३. विश्वे देवासश्चमसेषु---- पितरो नाराशंसाः* (८-५८)
*१४. आ पवस्व हिरण्यवदश्ववत् सोम वीरवत् ----* (८-६३)

# अध्याय - ९

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में ४० मन्त्र हैं। इसमें राजधर्म का वर्णन विद्यमान है। विद्वानों द्वारा राजा को राजधर्म का उपदेश, राजा की योग्यता, राजा का चयन, सत्संग, सेनापति की योग्यता, स्त्री-पुरुष का परस्पर व्यवहार, श्रेष्ठ पुरुषों का अनुकरण, सत्य का आचरण, राजा का पराक्रमी होना, राजा और प्रजा का पारस्परिक व्यवहार, वाणी का महत्व, ईश्वर की आज्ञा, चक्रवर्ती राज्य की विद्वानों द्वारा प्रेरणा इत्यादि विषयों का वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

**राजा के कर्तव्य :-** राजा के कर्तव्य का उपदेश देते हुए प्रथम मन्त्र का भावार्थ लिखा है कि "न्याय से प्रजा का पालन और विद्या का दान करना ही राज पुरुषों का यज्ञ करना है।" राजा को अपने राज्य में प्रजा की सुरक्षा और शिक्षा की समुचित व्यवस्था रखनी चाहिये। जैसे परमेश्वर ने सभी प्राणियों के कल्याण सुख और ऐश्वर्य के लिये सृष्टि की रचना की है वैसे राजा को भी प्रजा के कल्याण की व्यवस्था अपने राज्य में करनी चाहिये, यह निर्देश (९-२) में दिया है। इसी विषय में अगले मन्त्र (९-३) में निर्देश देते हुए लिखा है कि "राजा को चाहिये कि अपने नौकर, प्रजा पुरुषों को शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाने के लिये ब्रह्मचर्य, ओषधी, विद्या और योगाभ्यास के सेवन में नियुक्त करें, जिससे सब मनुष्य रोग रहित होकर पुरुषार्थी होवें" अर्थात् राजा को प्रजा के शारीरिक स्वास्थ्य का उनके आत्मिक बल के विकास के लिये योगाभ्यास का भी ध्यान रखना चाहिये, जिससे प्रजा का जीवन धार्मिक और पवित्र रहे और सुख का उपभोग करे। जीवन को शुद्ध पवित्र रखने के लिये राजा और प्रजा को श्रेष्ठ जनों का सत्संग करना चाहिये दुष्टों के संग से दूर रहना चाहिये यह भी सन्देश वेद (९-४) में दिया है।

**पृथिवी की प्रशंसा :-** जिस धरती पर मनुष्य रहता है, यह धरती (भूमि) माता मनुष्य पर कितना उपकार करती है इसका संकेत करते हुए वेद (९-५) में लिखा है कि "हे मनुष्यो ! जो यह भूमि प्राणियों के लिये सौभाग्य के उत्पन्न, माता के समान रक्षा और सबको धारण करनेवाली प्रसिद्ध है उसका विद्या-न्याय और धर्म के योग से राज्य के लिये तुम लोग सेवन करो।" भूमि माँ के समान सभी प्राणियों को धारण करती हैं और उनका पालन भी करती है इसलिये वेद में भूमि को माता भी कहा हैं। इसलिये मातृभूमि की रक्षा मनुष्य को करनी चाहिये, इस निमित्त राजा का विशेष उत्तरदायित्व है यह संकेत वेद में दिया है।

**स्त्री की योग्यता :-** स्त्रियों के विषय में वेद में उपदेश दिया हैं कि "स्त्रियों को चाहिये कि समुद्र के समान गम्भीर, जल के समान शान्त स्वभाव, वीर पुत्रों को उत्पन्न करने, नित्य उत्तम पदार्थों का सेवन और जलादि पदार्थों को ठीक-ठीक जानने वाली होवें" अर्थात् स्त्री को शान्त और गम्भीर स्वभाववाली, धैर्य धारण करनेवाली होना चाहिये, विविध प्रकार के ज्ञान, विज्ञान की विशेषज्ञ भी स्त्री

को होना चाहिये जिससे वीर पुत्रों को जन्म देने में सफल हो सके। मूर्ख और कमजोर सन्तान सभी के लिये कष्टदायक होती है। इसलिये सन्तान् बुद्धिमान्-बलवान् और वीर हो और इसमें माँ का महत्वपूर्ण योगदान होता है यह सन्देश वेद में दिया गया है।

**राजा और राजकीय स्त्री-पुरुष :-** राजकीय स्त्री-पुरुषों को जल-वायु आदि भौतिक जड़ पदार्थों का विशेष ज्ञान होना चाहिये, जिससे राज्य की उन्नति के लिये इन पदार्थों का यथोचित उपयोग कर सकें (९-७) राजकीय पुरुषों को अभिमान और ईर्ष्या द्वेष रहित राज्य की रक्षा और विकास में प्रयत्न शील होना चाहिये यह सन्देश भी (९-८) दिया है। मन्त्र के भावार्थ में ऋषि लिखते हैं कि "हे राज सम्बन्धी स्त्री पुरुषो ! आप लोग अभिमान रहित और दूसरों की उन्नति देखकर प्रसन्न होने वाले होकर विद्वानों के साथ मिलके राजधर्म की रक्षा किया करो।" अर्थात् राजधर्म के लिये सदा प्रयत्न शील रहना चाहिये। जो पुरुष धर्म युक्त न्याय से प्रजा का पालन करता हो उसे ही राजा मनोनीत करना चाहिये (९-२१) राजा बलवान् शत्रुओं को जीतने वाला और धर्मात्माओं का रक्षक होना चाहिये (९-९) यह उपदेश देकर वाणी की सत्यता के विषय में आगे लिखा है कि "राजा और राज्य कर्मचारियों को सदा सत्य बोलना चाहिये जो सदा सत्य बोलता है वही राज्य करने का अधिकारी है ऐसा उल्लेख करते हुए लिखा है कि "जिसकी वाणी सब काल में सत्य होती है वही पुरुष राज्याधिकार के योग्य होता है।" (९-१२)

**वेद विद्या का प्रचार :-** राज्य में वेदों की शिक्षा, प्रचार और मनुष्यों में वेदानुकूल आचरण विद्यमान रहे ऐसा राजा को प्रयास करना चाहिये। इस विषय में वेदमन्त्र के भावार्थ में लिखा हैं कि "राजा को ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे राज्य में वेद विद्या का प्रचार और शत्रुओं पर विजय (प्राप्त करना) सुगम - सरल हो, उपदेशक---लोग ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे राज्य में वेदादि शास्त्र पढ़ने-पढ़ाने की प्रवृत्ति----होवे जिससे अधर्म का नाश और धर्म की वृद्धि अच्छे प्रकार स्थिर होवे।" अर्थात् वेदों के प्रचार-प्रसार से धर्म की रक्षा और प्रचार हो सकता है क्योंकि धर्म का मूल-आधार भी वेद ही है ऐसा मनु ने कहा भी हैं। धर्माचरण से ही सुख प्राप्त होता है (९-१९)

**कर (टैक्स) व्यवस्था :-** प्रजा की रक्षा करने के लिये राजा प्रजा से कर (टैक्स) लेता है इसलिये प्रजा की रक्षा उसे करनी चाहिये। इस विषय में लिखा है कि "जो राजपुरुष हम लोगों से कर लेते हैं वे हमारी निरन्तर रक्षा करें, नहीं तो न लें, हम भी उनको कर न दें" (९-१७)। इस मन्त्र से यह सन्देश भी मिलता है रक्षा करने में अयोग्य व्यक्ति को राजा न बनाया जाय, न उसे कर दिया जाय। मनुष्यों को धन प्राप्ति के लिये पुरुषार्थ करना चाहिये यह उपदेश मन्त्र (९-२२) में दिया है कि "ईश्वर की यह आज्ञा है कि तुम लोग सदैव पुरुषार्थ में प्रवृत्त रहो और आलस्य मत करो।"

**धर्मात्मा :-** महत्वपूर्ण पदों पर धर्मात्माओं की नियुक्ति करनी चाहिये इस विषय में लिखा है कि "जो विद्वान् धार्मिक हों उसे न्यायाधीश वा कोषाध्यक्ष करो" (९-२४) राजा भी धर्मात्मा होना चाहिये जिससे धर्म और विद्या का प्रचार-प्रसार और रक्षा हो सके (९-२७) राजा के विषय में पुनः लिखा है कि राजा ईश्वर में विश्वास रखने वाला आस्तिक होना चाहिये (९-३०) राजा वेदों का विद्वान् तथा सबका रक्षक और पालन पोषण करने वाला होना चाहिये (९-३२) राजा में यह योग्यता होनी चाहिये कि प्रजा में ईर्ष्या-द्वेष-घृणा को समाप्त करके प्रेमपूर्वक मित्रभाव से रहने की भावना पैदा कर सके (९-३३) जिस राजा के राज्य में विद्वान् धार्मिक पुरुष सभासद् या कर्मचारी होते हैं ऐसा व्यक्ति ही चक्रवर्ती राज्य करने के योग्य होता है (९-३५)।

**प्रजा को निर्देश :-** जब मनुष्य जीवन में नम्रता, सुशीलता, धार्मिकता आदि गुणों से युक्त होता है तब वह सुख, ऐश्वर्य को प्राप्त करता और कराता है, ऐसा मन्त्र के भावार्थ में लिखा है कि "जो देश-देशान्तर तथा द्वीप-द्वीपान्तर में जाकर विद्या, नम्रता, अच्छी शिक्षा और काम की चतुराई को ग्रहण करते हैं वे ही सबको अच्छे सुख प्राप्त कराने वाले होते हैं (९-३६)।"

प्रजा को भी सावधान करते हुए लिखा है कि "प्रजा को चाहिये --- अपने बचाव और दुष्टों के निवारणार्थ, विद्या और धर्म की प्रवृत्ति के लिये अच्छे स्वभाव --- जितेन्द्रिय, सत्यवादी राजा को स्वीकार करें (९-३८) अध्याय के अन्तिम मन्त्र में उपदेश दिया है कि जो --- पूर्ण विद्या से सुशील, शरीर और आत्मा से पूर्ण बलयुक्त, धर्म से प्रजा का पालक, प्रेमी, विद्वान् हो उसको सभापति राजा मानकर चक्रवर्ती राज्य का सेवन करो (९-४०)" अर्थात् सद्गुणों से सम्पन्न व्यक्ति राजा होगा तो चक्रवर्ती राज्य का सुख राजा के साथ-साथ राजकर्मचारी और प्रजाजन भी भोग सकते हैं।

**टिप्पणी :-**

१. *देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्र सुव ----* (९-१)
२. *अपां रसमुद्वयसं ---- त्वा जुष्टतमम्* (९-३)
३. *इन्द्रस्य वज्रोऽसि---- सविता धर्म साविशत्* (९-५)
४. *माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ----* (अथर्ववेद)
५. *अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्----* (९-६)
६. *वातरंहा भव वाजिन्युज्यमान ---- जवंद धातु* (९-८)
७. *बृहस्पते वाजं जय बृहस्पतये वाचं वदतु ----* (९-११)
८. *वेदोऽखिलो धर्ममूलम्* (मनुः)

# अध्याय - १०

**विषय विवेचन :-** दशम अध्याय में ३४ मन्त्र हैं। इस अध्याय में राजधर्म तथा विद्वानों का महत्व और कार्य, राजा-मन्त्री और सेना के अधिकारी प्रजा के साथ किस प्रकार का व्यवहार करें, किसी को क्या देना चाहिये ? बालक-बालिकाओं का ब्रह्मचर्य पूर्वक शिक्षण, राजा की रक्षा, स्वभाव को श्रेष्ठ बनाना, व्यापारी वर्ग को राजा द्वारा संरक्षण, विविध पदार्थों का ज्ञान, राजा और प्रजा द्वारा परस्पर एक दूसरे की रक्षा करना, विद्वानों द्वारा सत्य का उपदेश, विविध प्रकार के यान निर्माण, ईश्वरोपासना से कामनाओं की सिद्धि, सन्तान का माता-पिता के साथ संवाद, स्त्री शिक्षा, राजा की पत्नी द्वारा राजकार्य में सहयोग, राजा और प्रजा का पिता पुत्रवत् व्यवहार इत्यादि विषयों का उपदेश दिया गया है।

**राजा और राज कर्मचारी :-** इस अध्याय के प्रथम ग्रन्थ में विद्वानों के सहयोग से जल के विविध गुणों को जानकर जनकल्याण के कार्यों में मनुष्यों को उसका उपयोग लेना चाहिये। जो राजा और राज कर्मचारी श्रेष्ठ पुरुषों (विद्वानों) को सम्मानित करके उनके निर्देशों का पालन करते हैं वे दुष्टों पर विजय प्राप्त करने में सफल होते हैं राजा और राजकर्मचारी स्त्री पुरुष परस्पर एक दूसरे के साथ ईर्ष्या-द्वेष न करके प्रेमपूर्वक रहते हुए अपने और अपने राज्य की उन्नति के लिये प्रयत्न करते रहें यह उपदेश वेदमन्त्र में दिया हैं। राजपुरुषों को अपने समान गुण कर्म स्वभाव वाली स्त्रियों से विवाह करना चाहिये तथा सभी के साथ पक्षपात रहित न्याय करना चाहिये, गौ आदि पशुओं की रक्षा करनी चाहिये (१०-३)। मनुष्यों को धर्मात्मा व्यक्तियों के समान अपना गुण-कर्म-स्वभाव बनाने की इच्छा रखनी चाहिये (१०-४)।

**स्त्री शिक्षा :-** स्त्री शिक्षा के विषय में उपदेश देते हुए वेद मन्त्र (१०-३) के भावार्थ में ऋषि ने लिखा है कि "हे राजा आदि पुरुषों ! तुम लोग इस जगत् में कन्याओं को पढ़ाने के लिये शुद्ध विद्या की परीक्षा करने वाली स्त्री लोगों की नियुक्ति करो जिससे ये कन्या --- विद्या और शिक्षा को प्राप्त हो के जवान हुई प्रिय वर पुरुषों के साथ स्वयंवर विवाह करके वीर पुरुषों को उत्पन्न करें।" वेद में निर्देश किया है कि स्त्री शिक्षा स्त्रियों के द्वारा होनी चाहिये, शिक्षिका अपने-अपने विषय की योग्य विदुषी होनी चाहिये, जिससे छात्राओं को उच्च शिक्षा दे सकें। लड़की का बालविवाह नहीं होना चाहिये, यह संकेत भी वेद मन्त्र में दिया गया है। लड़की युवति होने पर अपने योग्य युवा पुरुष को जीवन साथी (वर) के रूप में चयन करे जिससे योग्य सन्तान उत्पन्न कर सके। स्त्री शिक्षा के ही विषय में अगले मन्त्र (१०-७) में उपदेश दिया है कि राजा का कर्तव्य है कि वह स्त्रियों को विदुषी बनावे, जिससे स्त्रियाँ योग्य और बलवान् सन्तान राष्ट्र में उत्पन्न करके राष्ट्र को बलवान् बनाने में योगदान कर सकें।

**सुख के साधन :-** मनुष्य सुख कब प्राप्त करता है ? इस विषय में उपदेश देते हुए वेद (१०-९) में कहा है कि जब तक मनुष्य श्रेष्ठ विद्वानों, उत्तम विदुषी माता और --- विज्ञान को प्राप्त नहीं होते तब तक सुख की प्राप्ति और दुःखों की निवृत्ति करने को

समर्थ नहीं होते। अर्थात् सुख की प्राप्ति में विदुषी माता, श्रेष्ठ विद्वानों और यथार्थ (सत्य) ज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। भौतिक सुख की प्राप्ति में धन का भी योगदान होता है, धन कमाने, भौतिक पदार्थों के अभाव को दूर करने का महत्वपूर्ण कार्य वैश्य (व्यापारी) करता है अतः राजा का कर्तव्य है कि व्यापारियों की सुरक्षा और उन्नति के साधनों का ध्यान रखे यह संकेत भी (१०-१२) में दिया है। पुरुषार्थ (परिश्रम) करने वाला व्यक्ति ही सुख प्राप्त करता है, आलसी और निकम्मा व्यक्ति सुख और श्रेष्ठ वस्तुएं नहीं प्राप्त कर सकता, यह उपदेश वेद में दिया है। इतना ही नहीं अपितु जो व्यक्ति ऋतुओं के अनुसार अपनी दिनचर्या-आहार-विहारादि करते हैं, सत्संग में सम्मिलित होते हैं, योगाभ्यास करते है ऐसे व्यक्ति सुख प्राप्त करते हैं। यह वर्णन भी वेद मन्त्र के भावार्थ में ऋषि ने लिखा है।

**विद्वान् और राजा :-** विद्वान् विद्या और धर्मोपदेश करके, राजा अपनी न्याय व्यवस्था (दुष्टों को दण्ड और सज्जनों को संरक्षण) द्वारा राज्य की उन्नति और प्रजा का कल्याण कर सकते हैं। किन्तु विद्वान् और राजा या राजकर्मचारी जितेन्द्रिय होने चाहिये। इस विषय में वेद में उपदेश है कि "जो शान्ति आदि गुणयुक्त जितेन्द्रिय विद्वान् पुरुष हो उसके राज्य का अधिकार देवे ---(१०-१७) राजा और विद्वानों के कर्तव्यों का उल्लेख है कि "उपदेशक और राजपुरुष सब प्रजा की उन्नति किया करें --- जो राजपुरुष --- वेद और ईश्वर की आज्ञा को छोड़ के अपनी इच्छा के अनुकूल प्रवृत्त होवें तो उनकी उन्नति का विनाश क्यों न हो" अर्थात् जो राजा और उपदेशक जितेन्द्रिय हो ईश्वर की आज्ञा और वेदों के अनुसार आचरण करने वाले होते हैं वे अपने राष्ट्र की उन्नति करने में सफल होते हैं राष्ट्र की उन्नति के लिये राज्य के विद्वान् लोग जल में चलने वाली नौकाएं-जलयान, आकाश में विचरण करने वाले वायुवान बनाने वाले हों, जिससे जल और वायु मार्ग से देश-देशान्तर में आवागमन करके व्यापार कार्य-धर्म सन्देश, राज्य सम्बन्ध आदि स्थापित किया जा सके यह संकेत (१०-१९) में दिया है।

**ईश्वरोपासना :-** परमेश्वर की उपासना से मनुष्य की सत् कामनाएँ पूर्ण होती हैं। परमात्मा के विषय में वेद में लिखा है कि वह संसार में व्याप्त है, माता-पिता के समान हितैषी, दुष्टों का विनाशक है, ऐसे ईश्वर की उपासना से मनुष्य की कामनाएँ पूर्ण होती हैं (१०-२०)। विद्वानों का कर्तव्य है कि वह राजा और राजपुरुषों को शिक्षा दे जिससे वे धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करके शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें (१०-२१) राजा और प्रजा कभी भी आलस्य और प्रमाद से ईश्वर और वेद की निन्दा न करें (१०-२२) उपदेश भी विद्वान् दिया करें, यह निर्देश देकर ईश्वर की उपासना के विषय में पुनः लिखा है कि "मनुष्यों को उचित है कि सर्वत्र व्यापक और पदार्थों की शुद्धि करने हारे ब्रह्म-परमात्मा ही की उपासना करें क्योंकि उसकी उपासना के बिना किसी को धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष से होने वाला पूर्ण सुख कभी नहीं हो सकता" अर्थात् ईश्वरोपासना से ही मनुष्य धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष प्राप्त करता है। अगले मन्त्र में उपासना के विषय में पुनः सन्देश दिया है कि "जो मनुष्य अपने हृदय में ईश्वर की

उपासना करते हैं वे सुन्दर जीवन आदि के सुखों को भोगते हैं और कोई भी पुरुष ईश्वर के आश्रय के बिना पूर्ण बल और पराक्रम को प्राप्त नहीं हो सकता'' (१०-२५) अर्थात् परमेश्वर की उपासना से मनुष्य मोक्ष ही नहीं अपितु सांसारिक सुख-बल पराक्रमादि भी नहीं प्राप्त कर सकता है।

**राजा और प्रजा :-** राजा की पत्नी भी राज्य कार्य में राजा का सहयोग करे, यह सन्देश मन्त्र (१०-२६) में दिया है। चक्रवर्ती राजा भी प्रजा के साथ न्याय करे (१०-२७) है। राजा और राजा की पत्नी के गुणों के विषय में इसी वेद मन्त्र के भावार्थ में लिखा है कि ''जैसा नीति विद्या और धर्म से युक्त पति हो वैसी ही स्त्री को भी होना चाहिये।'' राजा और रानी दोनों ही वेदों के ज्ञाता हों (१०-२८) राजा को पक्षपात रहित होकर न्याय करना चाहिये। (१०-२९) पिता के समान राजा अपनी-अपनी प्रजा की रक्षा करे, जो व्यक्ति ऐसा व्यवहार प्रजा के साथ करे वही राजा होने योग्य है, यह सन्देश वेद मन्त्र (१०-३०) में दिया गया है। मनुष्य को अपना जीवन शुद्ध पवित्र रखना चाहिये, ईश्वर की उपासना करनी चाहिये (१०-३१) राजा और प्रजा के व्यवहार के विषय में लिखा है कि जैसे खेती करने वाले लोग परिश्रम के साथ पृथिवी से अनेक फलों को उत्पन्न और रक्षा कर भोगते---ठीक-ठीक राज्य का भाग राजा को देते हैं वैसे ही राजा आदि पुरुषों को चाहिये कि अत्यन्त परिश्रम से इनकी रक्षा न्याय के आचरण से---आनन्द को भोगे (१०-३१) अर्थात् प्रजा राजा को कर (टैक्स) दे तथा प्रजा से कर (टैक्स) प्राप्त करके प्रजा की रक्षा करता हुआ प्रजा से प्राप्त धन का प्रजा के कल्याण के लिये उपयोग करे। राजा श्रेष्ठ (सज्जनों) की रक्षा के लिये होता है (१०-३३) इस अध्याय के अन्तिम मन्त्र में विवाह समान गुण-कर्म-स्वभाव और योग्यता वाले स्त्री पुरुष में होना चाहिये। पत्नी का पति के अनुकूल होना आवश्यक है यह निर्देश देते हुए लिखा है कि पुरुष---अपने योग्य अच्छे लक्षणों से युक्त रूप और लावण्यादि गुणों से शोभायमान विदुषी स्त्री के साथ विवाह करे। जो निरन्तर पति के अनुकूल हो--- राजा अपने मन्त्री नौकर और स्त्री के सहित प्रजा पर पिता के समान और प्रजा --- पुत्र के समान राजा के साथ वर्ते। इस प्रकार आपस में प्रीति के साथ मिल के आनन्दित होवें। अर्थात् पति पत्नी एक दूसरे के अनुकूल व्यवहार करें तथा राजा और प्रजा पिता-पुत्रवत् व्यवहार करें, यह उपदेश वेद में दिया गया है[८]।

**टिप्पणी :-**

*१. वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा---- अमुष्मै देहि ॥ (१०-२)*
*२. अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं में दत्त स्वाहा ---- (१०-३)*
*३. पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितु र्वः प्रसव --- राजस्वः (१०-६)*
*४. उदीचीमारोहानुष्टुप् त्वावतु ----- फलं द्रविणम् (१०-१३)*
*५. ऊर्ध्वामारोह पंक्तिः ---- द्रविणं प्रत्यस्तं नमुचेः शिरः (१०-१४)*
*६. इमं देवा असपत्नं सुवध्वं ---- ब्राह्मणानां राजा (१०-१८)*
*७. हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद् --- ऋतं बृहत् ॥ (१०-२४)*
*८. पुत्रमिव पितरावश्विनो ---- मघवन्नभिष्णक् ॥ (१०-३४)*

# अध्याय - ११

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में ८३ मन्त्र हैं। इसमें योगाभ्यास, भूगर्भ विद्या, उपासना और प्रार्थना, भूमि से सुवर्णादि रत्नों को प्राप्त करना, राजा के गुण और कर्म, विद्वानों के कर्म, मनुष्य जन्म और विद्या का महत्व, पुरुषार्थ और ऐश्वर्य, सर्वत्र विद्यमान वायु को जानने का प्रकार, अग्नि और वायु के गुण गृहस्थ स्त्री-पुरुष के गुण, आदर्श और कर्तव्य, सेनापति के गुण, विद्युत् विद्या, जल विद्या, माता-पिता के कर्तव्य, पिता-पुत्र सम्बन्ध, वर-वधू की प्रतिज्ञा, परस्पर व्यवहार, सेविका (दासी) के गुण, उत्तम शिक्षा द्वारा सन्तानों को सभ्य बनाना, विद्वानों के प्रति कर्तव्य, पति-पत्नी का पारस्परिक संवाद-व्यवहार, मनुष्यों का एक दूसरे से वार्तालाप, चोर डाकुओं से प्रजा की राजा द्वारा रक्षा, यजमान और पुरोहित का व्यवहार इत्यादि विषयों का विवेचन किया गया है।

**योगाभ्यास और भूगर्भ विद्या :-** मनुष्य एकाग्रचित्त से पृथ्वी में विद्यमान विविध पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और योगाभ्यास करता हुआ एकाग्रचित्त होकर ही परमात्मा का भी ज्ञान प्राप्त करके उसका साक्षात्कार कर सकता है। इस विषय में मन्त्र के भावार्थ में लिखा है कि "जो मनुष्य परमेश्वर की इस सृष्टि में समाहित हुए योगाभ्यास और तत्वविद्या को यथाशक्ति सेवन करे---तो अवश्य सिद्धियों को प्राप्त हो जावें"। जो मनुष्य योगाभ्यास करते हैं वे परमात्मा का साक्षात्कार और भौतिक पदार्थो का तत्त्वज्ञान प्राप्त करने में सफल होते हैं तथा नित्य सुख का उपभोग करते हैं यह सन्देश (११-४ में) दिया है योगाभ्यास कैसे करें? इसका उल्लेख करके आगे लिखा है कि "जो मनुष्य ईर्ष्या, द्वेष आदि दोषों को छोड़ ईश्वर के समान सब जीवों के साथ मित्र भाव रखते हैं वे संपत् को प्राप्त होते हैं (११-८) अर्थात् राग, द्वेष रहित होकर रहने से, सभी के साथ मित्र भाव से रहने पर मित्रता के कारण सुख-सुविधा सम्पन्नतादि गुण प्राप्त होते हैं। भूगर्भ विद्या के विषय में लिखा है कि "मनुष्यों को उचित है कि अच्छे खोदने के साधनों से पृथिवी को खोद और अग्नि के साथ संयुक्त करके सुवर्ण आदि पदार्थों को बनावे, परन्तु पहिले भूगर्भ की तत्त्वविद्या को प्राप्त होके ऐसा कर सकते हैं ऐसा निश्चित जानना चाहिये। अर्थात् भूभर्ग में विद्यमान पदार्थों को भूमि से खोदकर निकालना, उनको शुद्ध करना, खोदने के साधनों का निर्माण करना, भूगर्भ को खनन करने की प्रक्रिया का ज्ञान भी इस कार्य करने वालों को हो (११-१९) इत्यादि विषयों का संकेत इस मन्त्र में दिया है।"

**वैज्ञानिक प्रगति :-** मनुष्य को भूमि के अन्दर विद्यमान रत्नों को प्राप्त करने के अतिरिक्त देश-विदेश में शीघ्र जाने-आने के लिये विमान अर्थात् वायुयान-जलयानादि का निर्माण करना चाहिये जिससे व्यापार आदि के द्वारा अधिकाधिक धन वैभव को प्राप्त कर सकें। इस विषय में मन्त्र के भावार्थ में लिखा है कि "जब

मनुष्य लोग विद्या और क्रिया के बीच में परम प्रयत्न के साथ प्रसिद्ध हो और विमान आदि यानों को रच के शीघ्र जाना-आना करते हैं तब उनको धन की प्राप्ति सुगम होती है (११-१२) अगले मन्त्र में पुनः लिखा है कि "जो मनुष्य इस विमान आदि यान में यन्त्र कला, जल और अग्नि के प्रयोग करते हैं वे सुख से दूसरे देशों में जाने को समर्थ होते हैं" (११-१३) मनुष्य को वैज्ञानिक प्रगति तथा उन्नति करने का संकेत वेद मन्त्रों में दिया है।

**विद्वानों का अनुसरण :-** मनुष्य को विद्वानों के कर्मों और आदर्शों का अनुसरण करना चाहिये, मूर्खों का अनुसरण नहीं करना चाहिये। इस विषय में सन्देश देते हुए वेद में लिखा है कि "मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समान काम करें मूर्खवत् नहीं और सब काल उत्साह के साथ अग्नि आदि की पदार्थ विद्या का ग्रहण करके सुख बढ़ाते रहें"। विद्वानों के कर्मों का उल्लेख करते हुए आगे लिखा है कि "विद्वानों को चाहिये कि सुन्दर शिक्षा दें, ब्रह्मचर्य विद्या धर्म के अनुष्ठान और अच्छे स्वभाव आदि का सर्वत्र प्रचार करके सब मनुष्यों को ज्ञान और आनन्द से प्रकाशयुक्त करें" (११-१७) अर्थात् विद्वानों को मनुष्यों में विद्या, धर्म, ब्रह्मचर्यादि का पालन तथा श्रेष्ठ स्वभाव से सम्पन्न होकर इन गुणों का प्रचार करके मनुष्यों को ज्ञान-विज्ञान, और सुख-आनन्दादि से सम्पन्न करना चाहिये तथा मनुष्यों को ऐसे विद्वानों के आदर्शों को जीवन में धारण करना चाहिये, जिससे मनुष्य समाज सुखपूर्वक आनन्द का उपभोग कर सके। इसलिये मूर्खों से दूर रहकर उनके असभ्य आचरण का कदापि अनुकरण नहीं करना चाहिये, यह संकेत वेद मन्त्र ने दिया है।

**पुरुषार्थ और दान :-** मनुष्य को निरन्तर पुरुषार्थ करना चाहिये यह उपदेश वेद मन्त्र २१-२२ में दिया है। धन को प्राप्त करना उसका अच्छे कार्यों में व्यय करना चाहिये, इस विषयक उपदेश देते हुए लिखा है कि विद्वान् पुरुष को चाहिये कि अग्नि विद्या के सहाय से पृथिवी के पदार्थों से धन को प्राप्त हो, अच्छे मार्ग में खर्च कर और धर्मात्माओं को दान दे के विद्या के प्रचार से सबको सुख पहुंचावे अर्थात् विशेषज्ञ विद्वान् वैज्ञानिक कार्यों के द्वारा धन प्राप्ति के उपाय करके, धन प्राप्त करें तथा उस धन का उपयोग अच्छे कार्यों में करें ऐसे धर्मात्माओं को दान दें जो सद्विद्या और धर्मप्रचार द्वारा मानव मात्र को सुख पहुँचाने का यत्न कर रहे हों। स्वार्थी-ढोंगी-पाखण्डी व्यक्तियों को दान नहीं देना चाहिये।

**राजा और राजपुरुष :-** राज धर्म का विवेचन करते हुए वेद में उपदेश दिया है कि राजा और राजपुरुषों को चाहिये कि आप्त धर्मात्मा विद्वानों से विनय और युद्ध विद्या को प्राप्त हो प्रजा की रक्षा के लिये चोरों को मार शत्रुओं को जीतकर परम ऐश्वर्य की उन्नति करें। अर्थात् राजा और राजा के कर्मचारियों में अहंकार नहीं होना चाहिये उनमें नम्रता-सरलता होनी चाहिये। नम्रता-सरलतादि गुण धार्मिक विद्वानों से सीखना चाहिये, जो आप्त अर्थात् यथार्थ द्रष्टा और वक्ता हो। राजा प्रजा

की रक्षा करने में और चोर आदि दुष्टों को नष्ट करने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने का सामर्थ्य रखने वाला होना चाहिये। राजधर्म विषयक उपदेश अनेक मन्त्रों में दिया है। प्राकृतिक पर्यावरण को शुद्ध रखना और प्रजा के स्वास्थ्य को ठीक रखने का उत्तरदायित्व भी राजा का है इसलिये उसे अपने राज्य में दो प्रकार के वैद्य चिकित्सक रखने चाहियें। इस विषय में उपदेश देते हुए वेदमन्त्र (११-३८) के भावार्थ में लिखा है कि "राजा को चाहिये कि दो प्रकार के वैद्य रखे। एक तो सुगन्ध आदि पदार्थों के होम से वायु, वर्षा, जल और औषधियों को शुद्ध करे। दूसरे श्रेष्ठ विद्वान् वैद्य होकर निदान आदि के द्वारा सब प्राणियों को रोग रहित रखे"। अर्थात् वैद्य (चिकित्सक) यज्ञ का विशेषज्ञ विद्वान् तथा रोग के कारणों को जानकर चिकित्सा कार्य में सिद्धहस्त, इन दोनों प्रकार के वैद्यों की सुरक्षा करे जिससे वे निश्चिन्त होकर प्रजा के स्वास्थ्य को तथा पर्यावरण को ठीक रख सकें।

**सुसंस्कारित सन्तान :-** माता-पिता अपनी सन्तान को सुसंस्कारित करे इस विषय में लिखा है कि "हे अच्छे सन्तानो! तुमको चाहिये कि ब्रह्मचर्य सेवन से शरीर का बल और विद्या तथा अच्छी शिक्षा से आत्मा का बल पूर्ण दृढ़ कर स्थिरता से रक्षा करो ---- इस प्रकार माता-पिता अपनी सन्तानों की शिक्षा करें। (११-४४) अपनी सन्तानों को विषयों की लोलुपता से छुड़ा के ब्रह्मचर्य के साथ पूर्ण अवस्था को धारण कर---उन्नति करावें (११-४६) अपनी पुत्रियों को चिकित्सा शास्त्र अवश्य पढ़ावें जिससे रोगों की चिकित्सा करके पारिवारिक जनों का स्वास्थ्य ठीक रख सकें (११-४९) पुत्र-पुत्रियों को माता-पिता घर पर आठ वर्ष तक शिक्षा देकर पश्चात् गुरुकुल में भेज देवें (११-५८) इस प्रकार शिक्षा विषयक अत्युत्तम उपदेश वेद में दिया है, जिससे माता-पिता और आचार्य सन्तान को सुख दे सकें।"

**पति-पत्नी :-** पति-पत्नी का आदर्श जीवन कैसा होना चाहिये इस विषय में सुन्दर विवेचन वेद मन्त्रों में किया गया है। वे दोनों विवाह के समय प्रतिज्ञा करें कि अति विषयासक्ति, आयु को क्षीण करने वाले निन्दनीय कर्मों को कभी नहीं करेंगे, धर्माचरण जीवनपर्यन्त करते रहेंगे (११-४९) पति-पत्नी दोनों एक दूसरे को सुख देते रहेंगे (११-५०) आपस में किसी का अनिष्ट चिन्तन नहीं करेंगे (११-५२) विद्वानों का सत्संग, शरीर और आत्मा से स्वस्थ (११-५३) रहने का प्रयत्न करके अच्छी सन्तान उत्पन्न करेंगे।

श्रेष्ठ-सम्पन्न और विदुषी स्त्रियाँ चतुर दासियों को भोजन पकाने आदि के लिये रखें (११-५६) स्त्री-पुरुष को एक दूसरे की परीक्षा करके वेदोक्त रीति से विवाह करके उत्तम सन्तान प्राप्त करना चाहिये (११-५८) विषय भोगों से दूर रहकर ऋतुकाल में (सन्तान प्राप्ति के लिये) गमन करने वाले जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों के शरीर स्वस्थ, बलवान् और रोगरहित रहते हैं (११-६३) गृहस्थ स्त्री-पुरुषों को

विद्वानों का सत्संग करना चाहिये (११-६५) पत्नी घर में रुचिकारक स्वास्थ्यवर्धक खाद्य पदार्थों का निर्माण करे (११-६९) स्त्री-पुरुष आपस में द्वेष न करें, परस्पर मिलकर आनन्द में रहें (११-७४) धन के कारण अहंकार न करके कभी भी ईर्ष्या-द्वेष न करें (११-७५) इस प्रकार अनेक मन्त्रों में गृहस्थी स्त्री-पुरुषों को सत्कर्मों का सुन्दर उपदेश दिया है।

**उपदेश और पुरोहित :-** उपदेशक लोग उपदेश के द्वारा तथा शिक्षक शिक्षा के द्वारा वैर भाव को दूर करें (११-८०) पुरोहित यजमान को धर्माचरण की प्रेरणा दें तथा यजमान पुरोहित की उन्नति का ध्यान रखें (११-८१) राजा-के कर्तव्यों का उल्लेख करके लिखा कि "पापियों के सब पदार्थों का नाश और धर्मात्माओं के सब पदार्थों की वृद्धि सदैव सब प्रकार से किया करें (११-८२)" अर्थात् पापियों का विनाश और धर्मात्माओं की रक्षा का संकेत दिया है। अन्तिम मन्त्र में बल वर्धक खाद्य पदार्थों का सेवन करना चाहिये। मन्त्र के भावार्थ में ऋषि ने लिखा है कि "मनुष्यों को चाहिये कि सदैव बलकारी आरोग्य अन्न आप सेवे और दूसरों को देवें। मनुष्य तथा पशुओं के सुख और बल को बढ़ावे"। भोजन रोग कीटाणुओं से रहित, पशु हिंसा से रहित (अर्थात् मांसादि अभक्ष्य पदार्थ न हों) मनुष्य का भोजन बलवर्धक और सुखदायक हो यह उपदेश वेद में दिया है।

**टिप्पणी :-**

१. *युक्तेन मनसा वयं देवस्य* ---- (११-२)
२. *अभ्रिरसि नार्यसि त्वया* ---- (११-१०)
३. *पृथिव्याः सधस्थादग्निम्* ---- (११-१६)
४. *अन्वग्निरुषसामग्रमख्यद* ---- (११-१७)
५. *परि वाजपतिः कविरग्नि र्हव्या* ---- (११-२५)
६. *तमु त्वा पाथ्यो वृषा* ---- (११-३४)
७. *अपो देवीरुपसृज मधुमती* ---- (११-३८)
८. *अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि* ---- (११-८३)

# अध्याय - १२

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में ११७ मन्त्र हैं। इसमें विद्वानों के गुण, परमेश्वर की कृति, राजा और प्रजा के कर्म, ईश्वर और जीव के लक्षण, मां के कर्म, मनुष्य के कर्तव्य, पुनर्जन्म, सन्तान और माता पिता, अध्यापक और विद्यार्थी, संस्कारों का महत्व, कन्याओं को शिक्षा, अध्यापक और उपदेशक के कर्तव्य सभी को विद्या का दान, पति और पत्नी कैसे हो, गृहस्थ में प्रवेश क्यों, विवाह के समय की प्रतिज्ञा, कृषि कार्य, गौ आदि पशुओं का महत्व, औषधी सेवन, पुरुषार्थ-महत्व, ईश्वर प्रार्थना आदि विषयों का वर्णन है।

**विद्वानों के गुण :-** विद्वानों के गुणों का उल्लेख करते हुए वेदमन्त्र में स्पष्ट किया है कि जिस प्रकार सूर्य-चन्द्र-पृथिवी आदि लोक लोकान्तरों से इनके रचयिता परमात्मा का स्मरण होता, है ये सभी पदार्थ परमात्मा की याद दिलाते हैं वैसे ही विद्वान् परमात्मा के विषय में ज्ञान देते रहें। जैसे वृक्ष-फल-फूल से सुशोभित होते हैं उसी प्रकार वेदादि शास्त्रों के विद्वान् अपने सद्गुणों से सुशोभित होते रहें। (१२-४) वेदादि शास्त्रों से भूगर्भ विद्या का ज्ञान मनुष्य को करना चाहिये, भूगर्भादि विद्या के विना सुख ऐश्वर्य को प्राप्त नहीं कर सकता (१२-७) शिल्प विद्या के द्वारा विविध प्रकार की उन्नति करके धन और सुखों को प्राप्त करने का विद्वान् निरन्तर प्रयत्न करता रहे (१२-८) विद्वान् के कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए मन्त्र के भावार्थ में ऋषि ने लिखा है कि "विद्वान् पुरुषों को चाहिये कि कभी अधर्म का आचरण न करे और दूसरों को वैसा उपदेश भी न करें"। विद्वान् स्वयं पाप से दूर रहकर मनुष्यों को पाप से दूर रहने की प्रेरणा दें (१२-९) इस तरह अनेक मन्त्रों में विद्वानों के कर्तव्य और गुणों का वर्णन किया गया है।

**राजा के गुण :-** परमात्मा और जीवात्मा के गुणों का उल्लेख करके राजा की योग्यता के विषय में उपदेश दिया है कि "जो पुरुष ईश्वर की प्रजाओं को पालने और सुख देने को समर्थ हो वही राजा होने के योग्य होता है। ऐसे राजा के विना प्रजाओं को सुख भी नहीं हो सकता" (१२-१४) "जैसे विदुषी माता पुत्रों को पालती है वैसे प्रजाओं का पालन करें" (१२-१५) राजा को स्वयं धर्मात्मा होना चाहिये (१२-१७) राजा राजनीति के विशेष ज्ञाता हो (१२-२०) धन को व्यर्थ खर्च न करके अच्छे कार्यों में व्यय करता हो तथा सत्पात्रों को दान देता हो (१२-२२) इत्यादि गुण राजा में होने चाहिये।

**ईश्वरोपासना और पुनर्जन्म :-** ईश्वर के बनाये हुए पदार्थो को कार्य-कारण रूप में जानकर (१२-२४) जो मनुष्य अपने गुण-कर्म स्वभाव को ठीक करके ईश्वर की उपासना करता है वह सुखपूर्वक पूर्ण आयु का भोग करता है तथा धन ऐश्वर्य को प्राप्त करता है। (१२-२५) विद्वानों के सत्संग का लाभ लेकर पुरुषार्थ के साथ विद्या की उन्नति (१२-२८) सत्पुरुषों की सेवा तथा सुपात्रों को

दान देकर विश्व को सुखी करे (१२-३०)। जीवात्मा एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को धारण करता है अर्थात् जीवात्मा का पुनर्जन्म होता है इस विषय में लिखा है कि "जो जीव शरीर को छोड़ते हैं वे वायु और औषधि आदि पदार्थों में भ्रमण करते-करते गर्भाशय को प्राप्त होके नियत समय पर शरीर धारण करके प्रकट होते हैं (१२-३६) शरीर भस्मान्त अर्थात् मृत्यु होने पर पंचभूतों में विलीन हो जाता और जीवात्मा पुनः माँ के शरीर (गर्भाशय) में जाकर शरीर धारण करता है (१२-३८) जीवात्मा का पुनर्जन्म होता है। इस विषय में वेद में अनेक मन्त्र हैं"।

माता-पिता के कर्तव्यों का संकेत देते हुए लिखा है कि "माता पिता को चाहिये कि अपने पुत्रों को अधर्म और कुशिक्षा से युक्त कभी न करें (१२-३९) बुरे व्यवहार से बचाकर धर्मात्मा बनावे जिससे निन्दा से दूर रहकर असत्य का परित्याग और सत्य का ग्रहण करने की प्रवृत्ति होती है। जो मनुष्य कुसंग छोड़ सत्संग करते हैं, नित्य पुरुषार्थ करते हैं वे जीवन में सदा सफलता प्राप्त करते हैं (१२-४४) माता पिता सावधानी पूर्वक संस्कार करते हुए उत्तम सन्तान प्राप्त करें (१२-५१) यह निर्देश दिया है, सत्य विद्या तथा सदाचार की शिक्षा भी माता पिता दें (१२-५२) कन्या के लिये योग्य पति तथा पुत्र के लिये योग्य पत्नी प्राप्त हो ऐसा प्रयास माता पिता को करना चाहिये (१२-५३) योग्य स्त्री-पुरुष के गृहस्थी बनने पर ही सुख प्राप्त होता है" (१२-५६)

**उपदेशकों के गुण-धर्म :-** उपदेशकों के विषय में ऋषि ने मन्त्र के भावार्थ में लिखा है कि "राजा--- को चाहिये कि जो जितेन्द्रिय धर्मात्मा परोपकार में प्रीति रखनेवाले विद्वान् होवे उनको प्रजा में धर्मोपदेश के लिये नियुक्त करे (१२-५९) अर्थात् जो उपदेशक इन गुणों से युक्त होगा वही प्रजा में इन सद्गुणों का प्रचार करने में सफल हो सकेगा। उपदेशक स्त्री पुरुषों को धर्माचरण में सदा प्रेरित करे (१२-६०) स्त्रियों को पुरुषार्थ करने तथा न्याय के क्षेत्र में भी अग्रणी रहने का उपदेश दिया है (१२-६२,६३)"

**कृषि कर्म :-** मनुष्यों को खेती करने के विषय में विशेष ज्ञान प्राप्त करना चाहिये यह सन्देश देते हुए लिखा है कि मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों की शिक्षा से कृषि कर्म की उन्नति करे (१२-६९) विद्वानों को चाहिये कि यज्ञ के माध्यम से सुसंस्कारित खेत में उत्तम बीज डालकर गुणकारक अन्न प्राप्त करें (१२-७०) उत्तम बीज की रक्षा तथा उत्तम धान्य प्राप्त करें (१२-७१) इस तरह अनेक वेद मन्त्रों में कृषि विज्ञान की शिक्षा दी गयी है। गायादि पशुओं की रक्षा तथा चिकित्सा शास्त्र के अनुसार अन्नादि पदार्थों के सेवन करके स्वास्थ्य को ठीक रखने का (१२-७३) उपदेश भी दिया है।

**चिकित्सा विज्ञान :-** मनुष्य को अपने शरीर के विषय में सदा जागरुक रहना चाहिये, उसे अपना आहार-विहार ऐसा रखना चाहिये जिससे शरीर रोगी न

हो। औषधियों का सेवन और पथ्य का पालन करते हुए सदा रोग रहित और बलवान् रहे यह उपदेश अनेक मन्त्रों (१२-७५,७६,७७) में दिया है। जौ को शरीर के लिये पुष्टिकारक कहा गया है (१२-७८) रोगों से मनुष्य सदा बचा रहे इस विषय में उपदेश देते हुए लिखा है कि "मनुष्यों को चाहिये कि निदान-चिकित्सा ओषधि और पथ्य के सेवन से रोगों का निवारण करें तथा औषधियों के गुणों का यथावत् उपयोग लेवें जिससे रोगों की निवृत्ति होकर पुरुषार्थ की वृद्धि होवे" (१२-८१) रोग को दूर करना और शरीर को स्वस्थ पुष्टिकारक रखना यह आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रक्रिया है वेद में इसी प्रक्रिया का सन्देश दिया गया है। जो व्यक्ति शास्त्रानुसार ओषधि का सेवन करता है वह स्वस्थ और सुखी रहता है, इस विषय में मन्त्र का भावार्थ ऋषि ने लिखा हैं कि जो मनुष्य लोग शास्त्र के अनुसार औषधियों का सेवन करें तो सब अवयवों से रोगों को निकाल के सुखी रहते हैं। मनुष्यों को औषधियों का सेवन ही नहीं अपितु व्यायाम और प्राणायाम भी करना चाहिये जिससे रोग नष्ट होकर सुखपूर्वक रह सकें (१२-८७) यह निर्देश भी दिया है। इस तरह अनेक मन्त्रों में औषधियों के बारे में वर्णन किया गया है।

**धर्मात्मा सत्कार योग्य :-** जो मनुष्य लोगों को वेदों का ज्ञान देता है अच्छा व्यवहार करता है स्वयं भी सुख, ऐश्वर्य प्राप्त करता है और दूसरों को भी सुख तथा ऐश्वर्य प्रदान करता है। (१२-१०९) मनुष्य के सत्कर्म का उल्लेख करते हुए ऋषि ने लिखा है कि "जो मनुष्य जैसे अपने लिये सुख की इच्छा करे वैसे ही दूसरों के लिये भी किया करे वही आप्त सत्कार के योग्य है" (१२-११०) अर्थात् जैसा अच्छा व्यवहार हम अपने लिये दूसरे से चाहते हैं वैसा ही अच्छा व्यवहार हम दूसरों के साथ करें यही सन्देश वेद दे रहा हैं, मनुस्मृति में इसी को धर्म का लक्षण कहा है। यदि इसी प्रकार सब मनुष्य करने लग जाय तो संसार सुरक्षित और सुखी हो जाय इसीलिये कहा है कि धर्म के सुरक्षित होने पर मनुष्य भी सुरक्षित रहते हैं। जो लोग धर्म का आचरण करते है उनका सत्कार ही नहीं अपितु उनका अनुसरण करना चाहिये (१२-१११) जो मनुष्य धर्म का आचरण करता है उसके विषय में लिखा है कि "इस संसार में सबका हित करने वाला पुरुष सब प्रकार से वृद्धि को प्राप्त होता है" (१२-११४) अर्थात् धर्मात्मा सदा उन्नति करता है उसको किसी वस्तु की न्यूनता नहीं रहती है।

मनुष्य शरीर से स्वस्थ रहकर योगाभ्यास करके मोक्ष को प्राप्त कर सकता है यह संकेत मन्त्र (१२-११३) में दिया मनुष्य को सदा अपने मन और वाणी को भी वश में रखना चाहिये। (१२-११५) क्योंकि मन में अशुभ विचार आने से मनुष्य पाप की ओर प्रवृत्त होता है तथा वाणी की कटुता से अपने व्यक्ति को पराया अर्थात् मित्र को भी शत्रु बना लेता है, इसलिये इन दोनो (वाणी और मन) को वश में रखना चाहिये, अतः यह उपदेश दिया है। कौन चक्रवर्ती राजा हो सकता है इस विषय में लिखा है कि "जो मनुष्य परमात्मा के गुण-कर्म और स्वभाव के अनुकूल अपने

गुण-कर्म और स्वभाव करते (बना लेते) हैं वे ही चक्रवर्ती राज्य भोगने के योग्य होते हैं'' (१२-११७) अर्थात् श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न व्यक्ति ही चक्रवर्ती राजा हो सकता है यह सन्देश वेद ने दिया है।

**टिप्पणी :-**

१. *इशानो रुक्म उर्व्या ---- द्यौ रजनयत् सुरेताः ॥* (१२-१)
२. *सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने --- विश्वतस्परि ---* (१२-१०)
३. *हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद् ---- ऋतं बृहत् ।* (१२-१४)
४. *यस्यौषधीः प्रसर्पथांगं ------- मह्यमशीरिव ॥* (१२-८६)
५. *श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।*
*एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम् ॥* (मनु.)
६. *धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ॥ (महा.)*

# अध्याय - १३

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में ५८ मन्त्र हैं। इसमें परमेश्वर का स्वरूप और उसकी उपासना, मनुष्य तथा उसका व्यवहार, दुष्ट प्राणियों की निवृत्ति, राजा का शत्रु के साथ व्यवहार, राजा की पत्नी (राणी) की योग्यता, कार्य, व्यवहार, स्त्री पुरुष का पारस्परिक व्यवहार, वसन्त ऋतु के गुण, वसन्त ऋतु में मनुष्यों का व्यवहार तथा सुख प्राप्ति, सन्तानों को शिक्षा, वाणी का उपयोग, विदुषी स्त्री द्वारा धर्मोपदेश, कौन पशु हिंसा के योग्य और कौन से हिंसा न करने योग्य, भौतिक पदार्थों के उपयोग से लाभ प्राप्त करना, ग्रीष्म, शरद्, हेमन्त ऋतु विषयक दिनचर्या इत्यादि विषयों का वर्णन किया गया है।

**ईश्वर और उसकी उपासना :-** प्रथम मन्त्रं में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए पच्चीस वर्ष तक वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करके पदार्थों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना, उत्तम कर्म करने तथा ब्रह्म की उपासना करने का सन्देश दिया है। परमात्मा कैसा है और उपासना सें क्या प्राप्त होता है इसका वर्णन मन्त्रं के भावार्थ में लिखा है कि "मनुष्य को जिस सत् चित् और आनन्द स्वरूप, सब जगत् का रचने हारा सर्वत्र व्यापक, सबसे उत्तम और सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की उपासना से सम्पूर्ण विंद्यादि अनन्त गुण प्राप्त होते हैं उसका सेवन क्यों न करना चाहिये"? अर्थात् परमात्मा सृष्टि का बनाने वाला और सर्वशक्तिमान् तथा सच्चिदानन्दस्वरूप है उसकी उपासना से मनुष्य अनेक गुणों से सम्पन्न हो जाता है इसलिये उसे ईश्वर की उपासना करनी चाहिये। परमात्मा सभी लोक लोकान्तरों में व्याप्त है (१३-३) जगत् की रचना करके धारण कर रहा है और अन्त में प्रलय भी करता है (१३-४) सारे लोक लोकान्तर उसी की नियम-व्यवस्था में घूम रहे हैं (१३-६)

**राजा तथा राजपत्नी :-** मनुष्य को सर्पादि दुष्ट प्राणी तथा चोर डाकू आदि का शस्त्र से तथा ओषधि आदि से निवारण करना चाहिये। (१३-७,८) प्रजा को कष्ट देने वाले चोर डाकू आदि को राजा दण्डादि के द्वारा वश में करके प्रजा की रक्षा करे (१३-११) राजा दरिद्र (निर्धन) व्यक्तियों के सुख का सदा ध्यान रखे (१३-१३) जो मनुष्य सूर्य के समान तेजस्वी हो, उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाला, प्रजा का पालन करने में समर्थ तथा धार्मिक विद्वान् हो तो वह राजा बनने के योग्य होता है (१३-१४) राजा को अपनी पत्नी को भी राज्य कार्य में नियुक्त करना चाहिये यह सन्देश भी (१३-१७) दिया है। राजा की पत्नी (राणी) को पृथिवी के समान धैर्य शालिनी होना चाहिये (१३-१८) यह उपदेश दिया गया है।

**पति-पत्नी के कर्तव्य :-** पति-पत्नी परस्पर एक दूसरे का सम्मान करें, पुरुष अपनी पत्नी को छोड़ अन्य स्त्री की इच्छा न करे तथा पत्नी भी अपने पति को छोड़ अन्य पुरुष की आकांक्षा न करे, दोनों ही पत्नीव्रत और पतिव्रत धर्म का पालन करें यह सन्देश (१३-१९) मन्त्रों में दिया है। श्रेष्ठ पति-पत्नी के विना शुभ गुणों से

सम्पन्न सन्तान नहीं होती है और श्रेष्ठ सन्तान न हो तो माता पिता को सुख भी नहीं प्राप्त होता है। (१३-२०) जैसे सूर्य के प्रकाश से सभी वस्तुएं प्रकाशित होती हैं से ही विदुषी पतिव्रता श्रेष्ठ स्त्री से घर के सब कार्य प्रकाशित और सुशोभित होते हैं यह वर्णन मन्त्र (१३-२२) में किया है। घर की उन्नति में पत्नी का महत्वपूर्ण योगदान होता है। घर के सुख-ऐश्वर्य के लिये विद्वानों के सत्संग का लाभ अवश्य लेना चाहिये यह सुन्दर सन्देश (१३-२४) में दिया है।

**वसन्त ग्रीष्मादि ऋतुएं :-** वेदों में सभी सत्य विद्याएं सूक्ष्म रूप से विद्यमान हैं। वसन्त-ग्रीष्म-हेमन्तादि ऋतुओं में हमारी दिनचर्या-व्यवहार कैसा हो यह संकेत भी इस अध्याय में दिया है। मन्त्र का भावार्थ करते हुए ऋषि ने लिखा है कि "जब वसन्त ऋतु आती है तब पुष्प आदि सुगन्धों से युक्त वायु आदि पदार्थ होते हैं। इस ऋतु में घूमना डोलना पथ्य होता है"। वसन्त ऋतु में अन्य प्राणी भी आनन्दित होते हैं (१३-२८) मनुष्य को वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में शीतल स्थान का उपयोग करना चाहिये जिससे गर्मी के कष्ट से बचा जा सके (१३-३०) ऋतुओं के अनुकूल दिनचर्या और व्यवहार करने से मनुष्यों को सुख प्राप्त होता है (१३-३१) वसन्त ऋतु के आने से पहले शत्रुओं को जीतने के लिये राजा को यात्रा करनी चाहिये। (१३-३६) वसन्त ऋतु के पश्चात् ग्रीष्म ऋतु का मन्त्र (१३-५५) में उल्लेख किया है। मनुष्यों को ऋतुओं के अनुकूल अन्न जल का ग्रहण करके स्वस्थ रहना चाहिये (१३-४३) शरद् ऋतु (१३-५७) तथा हेमन्त ऋतु का मन्त्र (१३-५८) में कर्तव्य कर्मों का निर्देश दिया है कि मनुष्य अपनी बुद्धि को बढ़ाकर शुभ कर्मों को करे। जिस प्रकार ऋषि-महात्मा अपनी शुद्ध वाणी का प्रयोग करते हैं वैसे ही माता पिता अपनी सन्तान को सत्य एवं सुमधुर वाणी का प्रयोग करने की शिक्षा दें।

**विविध विषय :-** मनुष्य शिक्षा ग्रहण करके धर्म के आचरण से अपनी पवित्र और शुद्ध वाणी द्वारा अन्यों को धर्म और शिक्षा के लिये प्रेरणा दान करे (१३-३८) जिस विद्वान् ने जगत् के भौतिक पदार्थों का यथार्थ ज्ञान कर लिया है ऐसे विद्वान् से मनुष्यों को पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये (१३-३९) मनुष्य को विविध विषयों का ज्ञान उन विषयों के पारंगत विद्वानों से प्राप्त करना चाहिये (१९-४०) रोगनाशक सुगन्धित पदार्थों से मनुष्य यज्ञ करके जल और वायु को शुद्ध एवं रोग रहित पूर्ण आयु का भोग करें यह उपदेश देते हुए संकेत दिया है कि मनुष्य को अभिमानी और विषयासक्त नहीं होना चाहिये क्योंकि इससे विद्या और आयु दोनों ही नष्ट होते हैं (१३-४१) इस संसार का रचयिता परमेश्वर है ऐसा सभी को स्वीकार करना चाहिये। इस विषय में वेद मन्त्र के भावार्थ में ऋषि ने लिखा है कि यह जगत् ऐसा नहीं कि जिसका कर्ता अधिष्ठाता वा ईश्वर कोई न होवे, जो ईश्वर सबका अन्तर्यामी सब जीवों के पाप पुण्यों के फलों की व्यवस्था करने हारा और

अनन्त ज्ञान का प्रकाश करने हारा है उसी की उपासना से धर्म-अर्थ काम और मोक्ष के फलों को सब मनुष्य प्राप्त होवें।

मनुष्य को गाय-घोड़े आदि उपकारक पशुओं को नहीं मारना चाहिये (१३-४८) जिन पशुओं से खेती होती है, दूध प्राप्त होता है भेड़ से ऊन प्राप्त होती है इनकी सदा रक्षा करनी चाहिये (१३-४९) जंगल में रहने वाले हिंसक पशु जो मनुष्यों की हत्या वा हानि करते हैं उन्हें राजा मारे (१३-५०) ऊंट-बकरी-पशु तथा मयूरादि पक्षियों की भी राजा रक्षा करे तथा खेती को हानि पहुँचाने वाले पशुओं को मारकर प्रजा की रक्षा राजा को करनी चाहिये (१३-५१) इस प्रकार हानिकारक तथा हिंसक पशुओं का प्रजा की रक्षा के लिये राजा को वध करना चाहिये तथा गाय-बैल-ऊंट-भेड़-बकरी-घोडे आदि उपकारक पशुओं की राजा को रक्षा करनी चाहिये यह उपदेश इस अध्याय के कुछ मन्त्रों में दिया है।

**टिप्पणी :-**

१. *मयि गृह्णाम्यग्रे अग्निम् ---- सचन्ताम्* (१३-१)
२. *अपां पृष्ठमसि योनिरग्ने --- प्रथस्व ।* (१३-२)
३. *मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्न सन्त्वोषधीः ॥* (१३-२७)
४. *चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः* (१३-४६)

# अध्याय - १४

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में ३१ मन्त्र हैं। इसमें स्त्रियों के लिये उपदेश, वर्षा और शरद् ऋतु में व्यवहार, ज्ञान-विज्ञान की प्रगति, विदुषी स्त्री के कर्तव्य, ऋतु चक्र तथा संवत्सर तथा स्थूल और सूक्ष्म प्राणियों के शरीर की रचना करनेवाले परमात्मा का वर्णन विद्यमान है।

**विदुषी स्त्री का महत्त्व :-** इस अध्याय के प्रथम मन्त्र में विदुषी स्त्री के कर्तव्य का उपदेश देते हुए लिखा है कि "विदुषी --- स्त्रियों को योग्य है कि कुमारी कन्याओं को ब्रह्मचर्य अवस्था में गृहास्थाश्रम और धर्म की शिक्षा देके इनको श्रेष्ठ करें"। अर्थात् गृहस्थ में किन-किन कर्तव्यों का विशेष ध्यान रखना है इसका ज्ञान विवाह से पहले ही लड़कियों को दे देना चाहिये। धन-सुख और ऐश्वर्य को भोगने के लिये अपनी योग्यता के समान योग्यता वाले पुरुष के साथ विवाह करना चाहिये (१४-२) निरन्तर शास्त्रों का अभ्यास और विद्वानों का संग करना चाहिये जिससे गृहस्थ धर्म का पालन अच्छी तरह से कर सके। घर में काम करने वाले सेवकों (नौकरों) के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करके उनकी आवश्यकताओं का भी ध्यान रखते हुए उनकी पूरी तरह रक्षा करे यह सन्देश मन्त्र (१४-३) में स्त्री को दिया है। जो विदुषी स्त्री गृहस्थ विषयक कार्यों को सम्पन्न कराने में कुशल होती है पारिवारिक जीवन में अपने उत्तरदायित्व को ठीक तरह से समझती है वह सभी पारिवारिक जनों और प्राणियों को सुख देने में सफल रहती है (१४-४) विदुषी स्त्री वसन्त-ग्रीष्मादि ऋतुओं में दिनचर्या आहार-विहार आदि का पालन करते कराते हुए शारीरिक और मानसिक सुख प्रदान करती है (१४-६)

**जीवन की महत्ता और ऋतुचर्या :-** मनुष्य ही ब्रह्म से लेकर तृण पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करके सब ऋतुओं में यथोचित आहार विहार करके सुखपूर्वक रहते हुए दूसरों को भी सुख देकर परमात्मा को प्राप्त करने में सफल हो सकता है यही मानव जीवन की श्रेष्ठता है (१४-७) मनुष्य शरीर के महत्व को ध्यान में रखकर शरीर को औषधि के सेवन द्वारा स्वस्थ रखे, शास्त्रों का श्रवण करता रहे, आपस में प्रेमपूर्वक रहे, यज्ञ के द्वारा वर्षा कराके जल के अभाव को दूर करे (१४-८) जीवन में आलस्य न रखे (१४-९) खेती करने में जो उपयोगी पशु गाय, बैलादि हैं उनकी रक्षा करे (१४-१०) अन्न उत्पन्न करके सभी के भूख की निवृत्ति करे। वर्षा ऋतु में उस ऋतु के अनुकूल खाद्य पदार्थों का सेवन करना चाहिये तथा उस ऋतु में उपयोगी जो भी सामान आवश्यक हों उसका संग्रह करना चाहिये (१४-१५) शरद् ऋतु के विषय में भी अत्युत्तम उपदेश वेदमन्त्र (१४-१६) में दिया है। इस मन्त्र के भावार्थ में ऋषि ने लिखा है कि "हे मनुष्यो ! जो शरद् ऋतु में उपयोगी पदार्थ हैं उनको यथायोग्य शुद्ध करके सेवन करो" अर्थात् शरद् ऋतु में स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखना चाहिये, क्योंकि शरद् ऋतु में स्वास्थ्य ठीक रहा तो

शेष ऋतुओं में इतनी कठिनाई नहीं होती है। इसलिये वेद में अन्यत्र[२] भी सौ शरद् ऋतुओं तक देखता रहूँ, सुनता रहूँ, जीवित रहूँ आदि प्रार्थना की गयी है। पूर्ण आयु जीवित एवं स्वस्थ रहने के लिये शरद् ऋतु में विशेष ध्यान रखना चाहिये यह सन्देश वेद ने दिया है।

**विशिष्ट व्यवहार :-** पुरुष शरीर स्वस्थ रहे पूर्ण आयु (१०० वर्ष तक) जीवन रहे, इसे ध्यान में रखकर पत्नी उसके साथ व्यवहार करे वैसे ही पति भी पत्नी के साथ व्यवहार करे (१४-१७) जो धार्मिक कार्य करते हैं वे सुख प्राप्त करते हैं (१४-१८) अग्नि-वायु-सूर्य-चन्द्रादि सभी जड़ पदार्थ हमारे जीवन के लिये उपयोगी और महत्वपूर्ण हैं कुछ न कुछ ये हमें प्रदान करते हैं। देने वाले को देवता कहते हैं, जो दिव्य गुण कर्म स्वभाववाला होता है उसे भी देवता कहते हैं इसलिये अग्नि-वायु-सूर्यादि देवता हैं। परमात्मा देवों का भी देव है इसलिये उसे महादेव कहा जाता है (१४-२०) मनुष्य अपने मल-मूत्र से धरती को गन्दा करता, धरती-पृथिवी सब सहन करती और सबको धारण करती है, उसी के आश्रित सब प्राणी रहते हैं वैसे ही विदुषी स्त्री को सहन शील तथा परिवार के सभी छोटे बड़े सदस्यों, नौकर, चाकरों को धारण करना चाहिये अर्थात् उनकी सुख-सुविधा और आवश्यकताओं का ध्यान रखना और उनकी पूर्ति करना चाहिये यह उपदेश (१४-२०) दिया है। जो स्त्री पृथिवी के समान क्षमाशील होती है वह अपने कुल को उन्नति के उच्च शिखर पर ले जाने पर सफल होती है (१४-२२) हेमन्त ऋतु में भी ऋतु के अनुकूल खाद्य पदार्थों का सेवन करे तथा दूसरों को भी करावे यह उपदेश (१४-२७) दिया है।

परमेश्वर ने संवत्सर-ऋतु चक्र और काल विभाग करने वाले सूर्यादि पदार्थों को बनाया है (१४-२९) उस परमात्मा ने ही मनुष्यों के शरीर को बनाया पशु-पक्षी, कीट-पतंगादि स्थूल सूक्ष्म प्राणियों के शरीर की रचना की। उनके शरीर के भरण-पोषण के लिये विविध पदार्थों को बनाया ऐसे परमेश्वर की उपासना मनुष्य को करनी चाहिये (१४-३०)।

**टिप्पणी :-**

*१. ध्रुवक्षिति ध्रुवयोनि ध्रुवासि ---- सादयतामि हत्वा ॥ (१४-१)*
*२. पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् शृणुयाम शरदः शतम् ----- यजु.(३६-२४)*

# अध्याय - १५

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में ६५ मन्त्र हैं। इस में राजा और राजपुरुषों के कर्तव्य, स्त्री पुरुष का धर्म, सुख एवं स्वतंत्रता के लिये प्रयत्न, पदार्थविद्या को जानने का उपाय, स्त्री-पुरुष के कर्म, विद्वान् के कर्तव्य, राजा के गुण, विवाह योग्य स्त्री पुरुष, शिशिर ऋतु का विवेचन, राजा-प्रजा का धर्म इत्यादि विषयों का वर्णन है।

**सत्कर्म और ऋतुचर्या :-** राजा को उपदेश देते हुए लिखा है कि कभी धर्मात्मा का तिरस्कार और अधार्मिक पापी का कभी सत्कार नहीं करना चाहिये (१५-१) मनुष्य पुरुषार्थ करके परतन्त्रता को दूर कर स्वतन्त्रता प्राप्त करे (१५-५) पुरुषार्थ के द्वारा प्राणियों का कल्याण करते हुए सुख ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहिये (१५-७) पूर्व-पश्चिम उत्तर-दक्षिणादि दिशाओं के विषय में विस्तृत विवेचन मन्त्र (११-१४) में किया गया है। वर्षा ऋतु में मनुष्य को नियमपूर्वक आहार-विहारादि करना चाहिये (१५-१७) जिससे मनुष्य रोगी न हो। शरद् ऋतु में मनुष्य को युक्तिपूर्वक कार्य करना चाहिये (१५-१८) हेमन्त ऋतु में पुष्टिवर्धक खाद्यपदार्थों का सेवन करके शारीरिक बल बढ़ाना चाहिये (१५-१९) मनुष्य को अपनी जठराग्नि प्रज्वलित रखनी चाहिये जिससे उसकी शारीरिक शक्ति बढ़ती रहे (१५-२०) पुरुषार्थ करके ही मनुष्य विद्या-धन-ऐश्वर्य को प्राप्त कर सकता है इसलिये युक्तिपूर्वक सोच-विचार करके विद्यादि की प्राप्ति के लिये मनुष्य को पुरुषार्थ (परिश्रम) करना चाहिये (१५-२१)।

**परोपकार :-** मनुष्य का जीवन परोपकारी होना चाहिये इस विषय में उपदेश देते हुए वेद में लिखा है जैसे परमात्मा को बनाये हुए अग्नि-जल वायु आदि मनुष्यों के कल्याण के लिये हैं वैसे ही मनुष्यों को दूसरों के भी उपकार के लिये प्रयत्न करना चाहिये (१५-२३) विद्वानों को भी विद्या दान के द्वारा दूसरों का कल्याण करना चाहिये (१५-२४) अग्नि तत्व की विशेषताओं के द्वारा मनुष्यों को लाभान्वित करना चाहिये (१५-२६) अग्नि विद्या से व्यापारियों को लाभ उठाना चाहिये अर्थात् विविध प्रकार के यानों द्वारा गमनागमन कर व्यापार से धन की वृद्धि करें (१५-३०) यदि अग्नि तत्व का यथोचित प्रयोग किया जाय तो धन प्राप्त करने में बहुत सफलता प्राप्त होती है (१५-३५) राजा को अपनी सेना और प्रजा को श्रेष्ठ बनाने का यत्न करना चाहिये (१५-३९) यह निर्देश दिया है।

**शिक्षक और छात्र :-** अध्यापक अपने विद्यार्थियों से उनके श्रेष्ठ आचरण का अनुकरण करने की प्रेरणा दें (१५-४१) ज्ञान विज्ञान से विद्यार्थियों को प्रसन्न करना चाहिये (१५-४२) जैसे यज्ञ से जल-वायु शुद्ध होता है सबको सुख प्राप्त होता है वैसे ही अध्यापक शिक्षा के द्वारा विद्यार्थियों के आचरण को शुद्ध पवित्र करके उनके जीवन को सुखी करें (१५-४३) शास्त्रों को पढ़ाकर तथा योगाभ्यास

करते कराते छात्र और अध्यापक सब मनुष्यों की उन्नति के लिये प्रयत्न करते रहें (१५-४४) यह मार्ग निर्देश वेद ने किया है। धर्म के आचरण और विद्या के द्वारा मनुष्य आर्य (श्रेष्ठ) होता है (१५-४७) सब मनुष्यों को धर्मात्मा विद्वान् के समान विद्या पुरुषार्थ और सन्तोष आदि गुणों से युक्त होना चाहिये (१५-५०)।

**सुख के साधन :-** परमेश्वर ने सृष्टि की रचना करके विविध लोक-लोकान्तरों तथा भौतिक पदार्थों के द्वारा मनुष्यों को उन्नति करने के साधन तथा सुख प्रदान किया है वैसे ही राजा भी प्रजा का कल्याण करता रहे (१५-५१) मनुष्य धर्मात्मा व्यक्तियों के साथ मित्रता करके रहे (१५-५२) जिससे धर्म का आचरण करके पवित्र जीवन हो जाय और परोपकार करने की भावना उसमें जागृत हो जाय। वैवाहिक जीवन में पति-पत्नी को माता-पिता-आचार्य और अतिथियों को सुख देने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध रहना चाहिये (१५-५५) गृहस्थाश्रम में अपने कर्तव्यों का पालन ठीक प्रकार से पति-पत्नी करते रहें विदुषी स्त्री पुरुष यह उपदेश सदा उनको देत रहें। (१५-५९) ज्ञान-कर्म और उपासना के विना मनुष्य ईश्वर का साक्षात्कार नहीं कर सकता है (१५-६०) इसलिये मनुष्य को इन तीनों के द्वारा सदा ईश्वर के साक्षात्कार के लिये प्रयत्न शील रहना चाहिये। शिशिर ऋतु को वेद ने सुखदायी बताया है (१५-६४) तथा मनुष्यों को प्रेरणा दी है उसे अशुभ कर्मों का परित्याग कर सदा उत्तम कर्म करते हुए परस्पर सन्तुष्ट रहकर परमेश्वर की उपासना के द्वारा सुख और आनन्द प्राप्त करना चाहिये। इस तरह इस अध्याय में भिन्न भिन्न ऋतुओं में किस प्रकार मनुष्य सुखी रहता है तथा कैसे उन्नति करके परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता इसका अत्युत्तम विवेचन किया गया है।

# अध्याय - १६

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय ६६ मन्त्र हैं। इसमें 'रुद्र' देवता का वर्णन है, परमात्मा के लिये 'रुद्र' शब्द का प्रयोग आता है क्योंकि हि पाप कर्म करने वाले दुष्टों को दण्ड देकर उन्हें रुलाता है। इसी प्रकार राजा को भी रुद्र कहते हैं क्योंकि वह भी दुष्ट कर्म करने वाले चोर-डाकू आदि को दण्ड देकर रुलाता है। इस अध्याय में राजा-राज धर्म के विषय में वर्णन है। राजा और राज पुरुषों को क्या करना चाहिये, राजा और प्रजा का पारस्परिक व्यवहार, किसका सत्कार करना तथा किससे कौनसा कार्य लेना ? उद्योग करना, आदि विविध विषयों का वर्णन है।

**राजा का कर्तव्य :-** राजा को राज्य में शासन व्यवस्था सुचारू रूप से करने के लिये शस्त्र अस्त्रों का संग्रह करना चाहिये (१६-१) राजा शस्त्र अस्त्रों के द्वारा श्रेष्ठ व्यक्तियों की रक्षा करे, चिकित्सा शास्त्र विशेषज्ञ वैद्यों को राज्य की प्रजा और सैनिकों की चिकित्सा के लिये रखे (१६-५) सेनापति सैनिकों की सुख सुविधाओं का ध्यान रखकर उनको सदा प्रसन्न रखे (१६-७) सेनापति और सैनिकों के लिये अन्नादि खाद्य पदार्थों की राजा सदा व्यवस्था रखे (१६-८) सेनापति और सैनिकों को देश की रक्षा के लिये दुश्मन से उत्साह पूर्वक युद्ध करने की प्रेरणा देने के लिये उपदेश देनेवाले उपदेशकों और विद्वानों की व्यवस्था राजा को करनी चाहिये (१६-११) राजा के सैनिक माता-पिता-स्त्री-बच्चे-वृद्ध-राजदूतादि को न मारे (१६-१५) यह उपदेश दिया है। रक्षा करने वाले राज पुरुषों को अन्नादि खाद्यपदार्थ देवे तथा चोरों को राजा दण्ड देवे (१६-२०) मन्त्र में आये हुए नमः शब्द का अर्थ ऋषि ने शास्त्रीय प्रमाणों के अनुसार सत्कार-अन्न तथा दण्ड (वज्र) ये तीन अर्थ किये हैं। इन तीनों अर्थो का प्रयोग इस प्रकार है किराजा धर्मात्माओं की रक्षा और सत्कार करे तथा छल कपट करनेवाले दुष्टों को दण्ड दें तथा कर्मचारियों के अन्नदि खाद्य पदार्थों की व्यावस्था करें (१६-२१) मनुष्यों को सावधान करते हुए वेद ने सन्देश दिया कि एक अकेले राजा को सर्वधिकार न दे, प्रजा राजा का चयन करे, राजा सभासदों से सलाह करके निर्णय लिया करे (१६-२४) राजा अपने राज्य के शिल्पकारों तथा विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों के निर्माण करने वालों का, सेवकों का शिक्षकों आदि की सुख सुविधाओं का विशेष ध्यान रखे (१६-२७) राजा अपने राज्य के पशुओं तथा पशुओं की रक्षा करने वालों का भी विशेष ध्यान रखे। (१६-२८)

**मनुष्यों के कर्तव्य :-** गृहस्थियों के कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए मन्त्र में निर्देश दिया है कि ब्रह्मचारियों और संन्यासियों का गृहस्थ विशेष ध्यान रखे (१६-२९) अत्यधिक शीघ्र चलनेवाले विमान का निर्माण करके उनसे आवागमन करके उद्योग धन्धे और व्यापार के द्वारा अधिकाधिक धनोपार्जन करना चाहिये (१६-३१) छोटे-बड़े सभी एक दूसरे का स्वागत सत्कार करते रहें। ब्राह्मण-क्षत्रिय-

वैश्यादि सभी वर्ण परस्पर एक दूसरे का सम्मान करते हुए प्रसन्नता पूर्वक रहें (१६-३२) राजपुरुष भी प्रजा के साथ सद्व्यवहार करें (१६-३४) मनुष्य प्रत्येक कार्य को अच्छी तरह विचार करके करें (१६-३६) नदी-तालाब-कूप (कुए) वृक्ष-फल-फूल-अन्नादि की सुरक्षा तथा वृद्धि करता रहे (१६-३७) गौ आदि पशुओं का पालन, (१६-४०) परमेश्वर की स्तुति (१६-४१) अनाथ-असहाय व्यक्तियों का पालन पोषण मनुष्य को करना चाहिये (१६-४३) धनवान् निर्धन व्यक्तियों का पालन और सहयोग करे, राजा प्रजा के पशुओं की हत्या न करके उनकी रक्षा करे।

**वैद्य-तीर्थ-वैज्ञानिक :-** राजा के वैद्य (चिकित्सक) चिकित्सा और ओषधि द्वारा प्रजा और पशुओं को रोगरहित-बलवान्-प्रसन्न रखें (१६-४९) प्रजा स्वस्थ एवं सुखपूर्वक रहकर उन्नति करे ऐसा प्रयत्न राज वैद्य को करना चाहिये (१६-५०) राजा और राजा के कर्मचारी कभी भी धर्म का आचारण न छोड़ें (१६-५१) पृथिवी-जल-वायु आदि में रहनेवाले प्राणियों के विषय में विद्वानों को विशेष ज्ञान रखना चाहिये तथा उनको यथायोग्य उपयोग करने का प्रयत्न करना चाहिये (१६-५६) तीर्थ के विषय में ऋषि ने मन्त्र[1] का भावार्थ करते हुए लिखा है कि "मनुष्यों के दो प्रकार के तीर्थ हैं उनमें पहिले तो वे जो ब्रह्मचर्य, गुरु की सेवा, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना, पढ़ाना, सत्संग ईश्वर की उपासना और सत्यभाषण आदि दुःख सागर से मनुष्यों को पार करते हैं और दूसरे वे जिनसे समुद्रादि जलाशयों के इस पार उस पार जाने आने को समर्थ हों। (१६-६१) अर्थात् ईश्वरोपासना सत्यभाषणादि से मनुष्य दुःखसागर से पार हो जाता है तथा नौका (नाव) जलयानादि से मनुष्य नदी-सागरादि से पार हो जाता है इसलिये इन्हें भी तीर्थ कहते हैं। यह सन्देश वेद ने दिया है। ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में जो लोग उच्चत्तम शिखर पर हों, विविध प्रकार के वायुयानों से जो अन्तरिक्ष में सदा घूमते रहते हैं अर्थात् जो वैज्ञानिक और अन्त रिक्ष यात्री हैं राजा उनको सदा सुरक्षित और आर्थिक दृष्टि से निश्चिन्त रखेना चाहिये (१६-६५) अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले वैज्ञानिक ही नहीं अपितु पृथिवी पर काम करके मनुष्य भी निरन्तर उन्नति करते रहें यह सन्देश वेद मन्त्र[2] दे रहा है। इस अध्याय में विविध विषयों के द्वारा मनुष्यों का मार्ग निर्देश किया है।

**टिप्पणी :-**

१. *ये तीर्थानि प्रचरन्ति ---- धन्वानि तन्मसि ॥* (१६-६१)
२. *नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्याम् ----- जम्भे दध्मः ॥* (१६-६६)

# अध्याय - १७

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में ९९ मन्त्र हैं। इसमें सूर्य, मेघ (बादल) वर्षा गृहस्थाश्रम तथा गणित विद्या ईश्वर का स्वरूप, पदार्थ विद्या आदि विषयों का वर्णन है।

**न्यायाधीश :-** सूर्य की किरणों से बाष्प बादल के रूप में परिवर्तित होते तथा बादल से वर्षा होती है यह वर्णन किया गया है। (१७-१) संख्या वाचक शब्द एक-दस-सौ-हजार-लाख-करोड़ादि का वर्णन (१७-२) में है। ऋतुओं के अनुसार आचरण करने से सुख मिलता है (१७-३) समुद्र में रहनेवाले जीवों की रक्षा करनी चाहिये (१७-४) सूर्य जैसे अन्धकार को दूर को करते है वैसे ही आप्त विद्वानों को मनुष्यों के अविद्यादि अन्धकार दूर करना चाहिये (१७-८) जिन व्यक्तियों का अन्त:करण शुद्ध और पवित्र है उन व्यक्तियों को न्यायाधीश बनाना चाहिये (१७-११) जिस देश में अच्छे न्यायाधीश होते हैं वहाँ सुखों की वृद्धि होती है। संन्यासी उपदेश देकर गृहस्थियों की सत्कर्मों की ओर प्रेरित करे (१७-१३) विद्वान् उपदेश के द्वारा तथा राजा अपनी न्याय व्यवस्था के द्वारा प्रजा को सुखी करने का प्रयत्न करे यह सन्देश दिया है (१७-१५)।

**परमात्मा का स्वरूप :-** परमात्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुए वेद (१७-१७) में स्पष्ट किया है कि परमात्मा संसार का बनाने वाला-पालन करने वाला और प्रलय करनेवाला तथा सब जीवों को उनके कर्मों का फल (रूप में भोग पदार्थ) देने वाला है। परमात्मा सूक्ष्मातिसूक्ष्म, निराकार, अनन्त सामर्थ्यवान् हैं (१७-१९) परमात्मा सभी को धारण कर रहा है (१९-२०) परमात्मा एक ही है (१९-२६) उसी की उपासना करनी चाहिये, यह भी स्पष्ट किया है। जिस प्रकार माता पिता अपनी सन्तान का पालन करते हैं वैसे ही परमात्मा सब प्राणियों का पालन करता है (१७-२७) परमात्मा को कौन नहीं जान सकते हैं इसको स्पष्ट करते हुए लिखा हैं कि जो मनुष्य अविद्यादि अन्धकार में पड़े हुए हैं तथा पुरुषार्थ से रहित हैं वे परमात्मा नहीं जान सकते हैं (१७-३१)।

**राजा और सेनापति :-** ईश्वर के विषय में अनेक मन्त्रों में अत्युत्तम वर्णन किया गया है। राजा और सेनापति के विषय में निर्देश है कि वह शस्त्रास्त्र विद्या का ज्ञाता होना चाहिये (१७-३३) सेनापति पराक्रमी तथा शत्रु की सेना को जीतनेवाला बलवान् पराक्रमी तथा सैनिकों को उत्साहित करनेवाला हो (१७-३६) सेनापति धर्मात्माओं की रक्षा तथा दुष्टों को दण्ड देनेवाला हो (१७-३९) युद्ध के समय सैनिकों में वीरता की भावना भरने का प्रयत्न सेनापति करे (१७-४१) वेद में शूरवीर पुरुषों के समान शूरवीर स्त्रियों की सेना का भी स्पष्ट उल्लेख गया किया है (१७-४४) युद्ध में विजेता सैनिकों का सम्मान राजा को करना चाहिये (१७-५०) जिस राजा के राज्य में श्रेष्ठ प्रजा होती है तो यह उस राजा का

ऐश्वर्य है (१७-५४) अर्थात् राजा के लिये यह बहुत ही प्रतिष्ठा का विषय है।

**यज्ञ-योग और पुरुषार्थ :-** संसार की उन्नति और उपकार के लिये मनुष्यों को विद्वानों की संग तथा यज्ञ करना चाहिये (१७-५५) परिश्रम करके धन प्राप्त करना चाहिये (१७-५६) यज्ञ की सामग्री में रोगनाशक, पुष्टिकारक, मिष्ट तथा सुगन्धित पदार्थ होते हैं (१७-५७) इसलिये यज्ञ करना चाहिये। जिस परमात्मा ने सूर्यादि पदार्थ बनाये उसकी उपासना मनुष्य को अवश्य करनी चाहिये (१७-६१) जैसे सारथि घोड़ों को अभीष्ट स्थान पर ले जाता है वैसे ही मनुष्य जितेन्द्रिय होकर अपने अभीष्ट परमात्मा को प्राप्त करे। (१७-६८) जैसे योगी धारणा ध्यान समाधि आदि के द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करता है वैसे ही मनुष्यों को भी ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये (१७-७१) मनुष्य योगियों के साथ प्रीतिपूर्वक संवाद करे (१७-७३) जैसे घी से यज्ञ करने से जगत् का उपकार होता है वैसे ही विद्वान् जगत् का उपकार अर्थात् कल्याणकारी कार्य करे (१७-७९) सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से रोग के कीटाणु नष्ट होते हैं इसलिये जगत् की शुद्धि में सूर्य का योगदान होता है (१७-८०) जो मनुष्य विद्या को ग्रहण सज्जनों का संग, पुरुषार्थ, तथा अच्छा श्रेष्ठ स्वभाव और सत्य का आचरण करता है वह स्वयं सुखी रहता है और दूसरों को भी सुखी करता है (१७-८२) जो बल और अन्न के सामर्थ्य से युक्त होता है वह गृहस्थ सदा सफल होता है (१७-८५) अध्यापक और उपदेशक सबके सुख के लिये प्रयत्न करे (१७-८६) मनुष्य को शुद्ध-पवित्र और ज्ञान युक्त वाणी का प्रयोग करना चाहिये (१७-९३) गृहस्थ में रहते हुए स्त्री-पुरुष परस्पर प्रेमपूर्वक रहते हुए पुरुषार्थ करके धन प्राप्त करें तथा वेद विद्या की उन्नति के लिये निरन्तर प्रयत्न करें (१७-९८) यह उपदेश दिया है[४]। इस अध्याय के अन्तिम मन्त्र[५] में पुरुषार्थ करके उन्नति करने, शरीर को अपने आहार (भोजन) तथा नियमित दिनचर्या द्वारा स्वस्थ रखने का उल्लेख किया है।

**टिप्पणी :-**

१. *विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो ---- जनयन् देव एकः ॥* (१७-१९)
२. *यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद ----* (१७-२७)
३. *न तं विदाथ य इमा जजान ---- चरन्ति* (१७-३१)
४. *अभ्यर्षत सुष्टुतिं --- मधुमत् पवन्ते ॥* (१७-९८)
५. *धामन्ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः ---- ऊर्मम् ॥* (१७-९९)

# अध्याय - १८

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में ७७ मन्त्र हैं। इसमें ईश्वर-धर्मानुष्ठान राजा-प्रजा के कर्तव्य, विविध प्रकार के अन्न का महत्व, यज्ञ से उपलब्धियाँ, गणित विद्या, पशुपालन, वाणी का प्रयोग चन्द्रादि लोक लोकान्तरों का महत्व, विद्वान् के कर्तव्य, विद्वानों का अनुकरण, पदार्थों की शुद्धि, सुखी होने के साधन, दीर्घजीवन के उपाय तथा पुरुषार्थ इत्यादि विषयों का वर्णन है।

**यज्ञ से विविध लाभ :-** यज्ञादि शुभ कर्म करते हुए मनुष्य चावल, मूंग, उड़द, चना, गेहूँ-मसूरादि विविध प्रकार के अनाज प्राप्त करते हैं, इन खाद्य पदार्थों को संस्कारित (शुद्ध) करके स्वयं खावे और दूसरों को भी खिलावे। (१८-१२) यज्ञादि सत्कर्मों से विविध क्षेत्रों में सफलता प्रात करता है इस विषय में इस अध्याय के प्रथम मन्त्र से लेकर सत्ताइसवें (१-२७) मन्त्र तक ''यज्ञेन कल्पन्ताम्'' का उल्लेख करके स्पष्ट किया है। इन मन्त्रों में सुख के लिये ईश्वर की उपासना, प्राण-अपानादि का उपयोग धर्माचरण के लिये, सज्जनों की रक्षा तथा दुष्टों के दण्ड देने हेतु राज व्यवस्था, जगत् कल्याण के लिये प्रयत्न, विद्या का पठन-पाठन, सत्यभाषण, शम-दमादि गुणों को धारण करना, कृषि कार्य में प्रगति करना, धन प्राप्त करके उपकार करना, शिल्प विद्या से वैज्ञानिक उन्नति, प्राण और विद्युत् विद्या को जानकर इनसे लाभ उठाना, पदार्थ विद्या इत्यादि विषयों का वर्णन है। जो मनुष्य प्राणियों के सुख के लिये यज्ञ करते हैं वे महाशय-महापुरुष होते हैं (१८-२२) **एका च मे तिस्रश्च मे ----** (१८-२४, २५) मन्त्रों गणित विद्या अर्थात् जोड़ने घटाने आदि का अत्युत्तम विवेचन किया गया है। गाय-भेड़-बकरी आदि पशुओं के पालन और रक्षा से मनुष्य धनी और सुखी होते हैं। (१८-२६, २७)

**हितैषी मनुष्य :-** जो मनुष्य धर्मयुक्त वाणी का प्रयोग करते हैं, जितेन्द्रिय होते हैं वे सुखों को प्राप्त करते हैं। (१८-२९) जो आलस्य-प्रमाद को छोड़कर परिश्रम करते हैं, विद्वानों का संग करते हैं वे अत्युत्तम पदार्थों को प्राप्त करते हैं। (१८-३१) अन्न की महत्ता का वर्णन करते हुए लिखा है कि अन्न से ही मनुष्य शरीर की वृद्धि करता है, अन्न के विना मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता है। (१८-३४) चिकित्सा शास्त्र के अनुसार अन्नादि खाद्यपदार्थों के उपयोग करने से स्वस्थ और बलवान् रहता है, सब कार्यों में सफलता प्राप्त करता सुखी रहता है। (१८-३५, ३६) मनुष्य को सूर्य की किरणों से युक्तिपूर्वक लाभ उठाना चाहिये। (१८-३९) अर्थात् सौर ऊर्जा की ओर यह मन्त्र संकेत कर रहा है। सूर्य-चन्द्रादि लोकों से विशेष लाभ लेना चाहिये। (१८-४०) वायु-जलादि भौतिक पदार्थों के तत्वों का ज्ञान प्राप्त करके वैज्ञानिक प्रगति मनुष्य को करना चाहिये। (१८-४१) जो मनुष्य पुरुषार्थ करते हैं, वेदों के विशेष ज्ञाता है दैनिक अग्निहोत्र करते हैं वे संसार के भूषण हैं और वे संसार में सुखों की वृद्धि कर सकते हैं। (१८-४२, ४३) जो

व्यक्ति समुद्र के समान गम्भीर हैं, वायु के समान बलवान् हैं, विद्वानों के समान परोपकारी तथा अपने समान सबकी रक्षा करने वाले हैं वे व्यक्ति ही सबका कल्याण कर सकते हैं और सभी को सुखी कर सकते हैं। (१८-४५)

**स्वास्थ्य एवं सत्यासत्य का ज्ञान :-** ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रादि सभी वर्ण आपस में प्रेमपूर्वक रहें तथा कोई भी वर्ण किसी भी वर्ण का अनादर या तिरस्कार न करे। यह सन्देश वेदमन्त्र (१८-४८) दे रहा है। विद्वानों का अनादर नहीं करना चाहिये तथा अयोग्य आहार-व्यभिचार-अत्यन्त विषयासक्ति आदि आयु नाशक कर्म नहीं करने चाहियें। (१८-४९) सुगन्धित पदार्थों को यज्ञ में डालने से रोगों का विनाश हो जाता है (१८-५०) इसलिये मनुष्य को यज्ञ करना चाहिये। जैसे शास्त्रों के विद्वान् ब्रह्म को प्राप्त करके आनन्दित होते हैं वैसे ही सभी मनुष्यों को होना चाहिये यह उपदेश इस मन्त्र (१८-५२) में दिया है। जो मनुष्य सहनशील होता है, अपने स्वास्थ्य के अनुकूल भोजन करता है, दिनचर्या ठीक रखता है, स्वास्थ्यवर्धक औषधियों का सेवन करता हैं। इन्द्रियों को वश में रखता है वह सौ वर्ष तक जीवित रहता है (१८-५४) यह संकेत यहाँ दिया गया है। सत्यासत्य को प्रत्यक्षादि आठ प्रकार के प्रमाण, ईश्वर के गुण-कर्म स्वभाव तथा सृष्टिक्रमादि से जानने का जिसने यत्न किया है वह अत्यन्त सुख को प्राप्त करता है। विद्वानों के संग और योगाभ्यास के विना मनुष्य मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता है। (१८-६०) शिक्षक को अपने धर्म (कर्तव्य) का पालन करते हुए निष्कपट होकर छात्रों को पढ़ाना चाहिये क्योंकि जो अध्यापक ऐसा करते हैं वे सुखी रहते हैं। (१८-६२) हवन के समय अग्नि में आहुति देने से दुर्गन्ध का निवारण, सुगन्ध का फैलना और रोगों का विनाश होता है तथा प्राणियों को सुख मिलता है। हवन के समान ही सभी मनुष्यों को सुख देने का यत्न करना चाहिये (१८-६६) वेदों के विद्वान् वेदवित् कहलाते हैं (१८-६७) मनुष्य को सूर्य के समान तेजस्वी होना चाहिये। जो मनुष्य सूर्य के समान तेजस्वी-प्रतापी होता है उसके शत्रु नहीं होते हैं (१८-६९) अर्थात् सभी उसके तेज के समक्ष समाप्त या उसके प्रति समर्पित हो जाते हैं। सूर्य के समान तेजस्वी व्यक्ति की सभी प्रशंसा करते हैं। (१८-७२) विद्वानों को सन्देश देते हुए वेद में लिखा है कि मनुष्यादि सभी प्राणियों के कल्याण के लिये विद्वानों को सत्य का उपदेश करना चाहीये। (१८-७६) राजा को उसके कर्तव्यों का निर्देश देते हुए लिखा है कि विद्वानों का उपदेश सुनना तथा विद्वानों के उपदेश का पालन करना चाहिये। युद्ध में शहीद हुए योद्धाओं के पारिवारिक जनों का भरण पोषण करना राजा व सेनापति का प्रमुख कर्तव्य है। (१८-७७) वेदानुकुल आचरण करने से मनुष्य को सुख-धन-ऐश्वर्य आदि प्राप्त होते हैं।

# अध्याय - १९

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में ९५ मन्त्र हैं। इसमें धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष के लिये प्रयत्न, राजधर्म, मनुष्यों के कर्तव्य, स्त्री पुरुष का पारस्परिक व्यवहार, सन्तान का माता-पिता के साथ व्यवहार, सुख और यश प्राप्ति हेतु मनुष्य के कर्तव्य, बालिकाओं के कर्म, सुख प्राप्तकर्त्ता विद्वान्, रोगरहित (स्वस्थ) जीवन, वेदों का स्वाध्याय, गृहस्थ के कर्तव्य, धन्यवाद के योग्य मनुष्य, अधर्म से भय, जीव के दो मार्ग, ईश्वर से प्रार्थना, सेनापति के गुण, मुक्ति और ज्ञान प्राप्ति, राज्य की उन्नति, धर्माधर्म का ज्ञान, योगी के कर्तव्य इत्यादि विषयों का वर्णन है।

**स्वास्थ्य एवं आयुर्वेद :-** मनुष्य को सदा धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष के लिये सदा प्रयत्न करना चाहिये (१९-१) ओषधि का सेवन करके जठराग्नि (पाचन तन्त्र) को प्रदीप्त रख कर बल को बढ़ाने का यत्न करे (१९-२) सूर्योदय से पहले उठनेवाला व्यक्ति रोगरहित रहता है (१९-४) राजा-प्रजा सभी को बल-बुद्धि तथा स्वास्थ्यवर्धक अन्न-ओषधि आदि पदार्थों का सेवन करना चाहिये। (१९-७) माता-पिता अपने पुत्र-पुत्रियों का पालन करे, पाप कर्म से दूर रखें तथा सन्तान भी पितृ ऋण से अनृण-उऋण होने (छूटने) के लिये माता-पिता की सेवा किया करे। (१९-११) जब मनुष्य ओषधि का सेवन करता और ब्रह्मचर्य का पालन करता है तब उसे सुख आरोग्य-बल बुद्धि प्राप्त होती है। (१९-१३) लड़कियों को आयुर्वेद (चिकित्सा शास्त्र) अवश्य पढ़ाना चाहिये, जिससे परिवार के सदस्यों के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए बल-बुद्धिवर्धक खाद्यपदार्थ (भोजन) बनाया करे यह उपदेश दिया है (१९-१५) सामग्री में कौन से पदार्थ होते हैं इसका वर्णन करते हुए मन्त्र का भावार्थ करते हुए ऋषि ने लिखा है कि "जो पदार्थ पुष्टिकारक सुगन्धयुक्त मधुर और रोगनाशक गुण युक्त हैं वे होम करने के योग्य हविसंज्ञक हैं।" (१९-२१)

**विद्वानों के कर्म :-** विद्वान् प्रीतिपूर्वक शास्त्र चर्चा करते हैं और सुनते हैं। (१९-२२) जो सदा प्राणियों का कल्याण करते हैं वे सत्पुरुष कहलाते हैं। (१९-२६) अच्छी विद्या और श्रद्धा के विना मनुष्य सत्य को नहीं जान सकता है। (१९-३०) जो विद्वान् दूसरों को सुख प्रदान करते हैं वे धन्यवाद के पात्र हैं (१९-३३) सूर्य के कारण वर्षा होती है (१९-३५) माता पिता की वृद्धावस्था में श्रद्धा भक्ति से सेवा करनी चाहिये। (१९-३६) विद्वान् पुरुष और विदुषी स्त्री बालक और बालिकाओं को ब्रह्मचर्य और सुशिक्षा से उन्हें विद्वान् बनाते रहें (१९-३९) राजा कन्याओं की शिक्षा तथा उनके स्वयंवर की व्यवस्था किया करे यह निर्देश वेद (१९-४४) में दिया है।

**दो मार्ग और पितर :-** जो जीवात्मा भोगों को भोगने में लगा रहता है वह जन्म-मरण के बन्धन में पड़ा रहता है तथा जो विद्वानों के संग से सांसारिक भोगों से विरक्त होकर योग का मार्ग अपनाता है वह सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है (१९-४७)। इस तरह बन्धन और

मुक्ति का मार्ग, ये दो मार्ग जीवात्मा के हैं।[३] बाल्यावस्था में विवाह नहीं करना चाहिये यह निर्देश भी दिया है (१९-४९) सूर्य का चारों ओर पृथिवी और पृथिवी की चारों ओर चन्द्रमा घूमता है वैसे ही सन्तान माता-पिता-गुरुजनों के आसपास रहने तथा उनसे आदर्श जीवन की शिक्षा प्राप्त करने तथा शिक्षा के अनुसार आचरण करने से सुखी रहती हैं (१९-५४) अग्नि विद्या के विशेषज्ञ विद्वानों की सेवा करनी चाहिये (१५-५९) जो ज्ञानी-वृद्ध-पितर (माता-पिता) हैं उनको प्रणाम करके सेवा कर उनको प्रसन्न करें तथा ज्ञानी जन शिक्षा व उपदेश से सन्तानों की रक्षा करें (१९-६२) इस प्रकरण पितरों का विस्तृत विवेचन है। पितर मरे हुए नहीं अपितु ज्ञानी और वृद्ध जो जीवित हैं वे पितर हैं यह इस अध्याय में स्पष्ट किया है। जो उत्तम-जितेन्द्रिय-विद्वान् पितरों का संग करते हैं वे मृत्यु के बन्धनों से छूटकर मोक्ष को प्राप्त करते हैं। (१९-७२) जो व्यक्तिअभिमान छोड़कर युक्त आहार विहार-योगाभ्यास करता है वह कैवल्य (मोक्ष) को प्राप्त करता है (१९-७४) विद्वानों के संग से ही राजा को अपने राज्य की वृद्धि करनी चाहिये। (१९-७५)

**पति-पत्नी तथा योगी :-** मनुष्य जो अन्न खाता है उसका रस, रक्त-मांस-मज्जादि तथा वीर्य बनता है सन्तान प्राप्ति हेतु ही गृहस्थ स्त्री पुरुष उसका व्यय करें, ऋतु गामी हों, यह संकेत दिया है (१९-७६)। शास्त्रानुकूल धर्माचरण करें (१९-७७) चिकित्सा शास्त्र के अनुसार स्वास्थ्य का ध्यान रखें (१९-८२) जो शुक्र (वीर्य) की महत्ता और उपयोगिता को जानकर सन्तान प्राप्ति हेतु प्रयास करते हैं, वे सद्गुण सम्पन्न सन्तान प्राप्त करते हैं। (१९-८४) स्त्री-पुरुष अपने शरीर में शुक्र (वीर्य) को सुरक्षित रखकर श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करें (१९-८७) सन्तान उत्पन्न करने और उसका श्रेष्ठ जीवन निर्माण करने की सारी प्रक्रिया का ज्ञान गृहस्थ स्त्री-पुरुष को होना चाहिये (१९-८८) जिससे गर्भस्थ शिशु के प्रति अपने उत्तर दायित्व का वे ठीक निर्वाह कर सकें। जैसे योगी योगमार्ग में सफलता प्राप्त करता है वैसे ही गृहस्थी सन्तान निर्माण में सफलता प्राप्त करे (१९-९१) जैसे रोगी व्यक्ति ओषधि का सेवन कर के रोगरहित हो जाता है वैसे ही योगी योग का अनुष्ठान करके अविद्यादि क्लेशों से दूर हो जाता है (१९-९३) विद्वान् व्यक्ति योगियों संग से योग का प्रचार प्रसार करके सब को सुखी करें (१९-९४) योगी व्यक्त्यिों को मन और इन्द्रियों को अधर्माचरण से दूर रखकर सदा प्रसन्न रहना चाहिये यह उपदेश इस अध्याय के अन्तिम मन्त्र (१९-९५) में दिया गया है।

**टिप्पणी :-**

१. *धानाः करम्भः सक्तवः परीवापः पयो दधि ।*
*सोमस्य रूपं हविष आमिक्षा वाजिनम्मधु ॥* (१९-२१)

२. *व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।*
*दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥* (१९-३०)

३. *द्वे सृती अशुणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।* (१९-४७)

# अध्याय - २०

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में ९० मन्त्र हैं। इसमें राजधर्म, अध्यापक और उपदेशक की योग्यता-कर्म, ईश्वरोपासना, स्त्री-पुरुष के कर्तव्य, वैद्य का कर्तव्य, ओषधियों के गुण-धर्म, पुरोहित और यजमान के कार्य, स्त्री शिक्षा इत्यादि विषयों का वर्णन है।

**राजा-उपदेशक और शिक्षक :-** राजा प्रजा की सदा रक्षा करता रहे (२०-१) यदि राजा धर्मात्मा होता है तो वह प्रजा की रक्षा करने में समर्थ होता है (२०-२)। इसलिये प्रजा के कल्याण के लिये धर्माचरण करनेवाले व्यक्ति को राजा बनाना चाहिये यह सन्देश वेद ने दिया है (२०-३)। राजा और राजपुरुषों का भी कर्तव्य है कि वे अन्तःकरण (मन-बुद्धि आदि) की पवित्रता से आत्मिक बल को बढ़ाते रहें (२०-७) राजा प्रिय-अप्रिय का त्याग करके न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करे (२०-१०) अध्यापक और उपदेशक के कर्तव्यों के विषय में लिखा है कि मनुष्यों को वेदादि शास्त्रों को पढ़ाकर पदार्थ विद्या का ज्ञान करावें (२०-१२) शिक्षक अपने छात्रों को पाप कर्म से पृथक् रखें (२०-१६) शिक्षकों और उपदेशकों को स्वयं भी धर्म का आचरण करना चाहिये (२०-१७) जिससे उनके आचरण को देखकर मनुष्य धर्म का आचरण करने लग जायं। छात्रों का शरीर नीरोग, आत्मा पवित्र तथा शुभ कर्म करने वाला हो ऐसी शिक्षा अध्यापक छात्रों को दें (२०-२०) परमात्मा की उपासना के विषय भी शिक्षा देनी चाहिये (२०-२३) परमात्मा की उपासना करते समय जब एकाग्रता होती है तभी मनुष्य आनन्द को प्राप्त करता है। (२०-२७) मनुष्य को स्वस्थ रहकर पुरुषार्थ करके ब्रह्म की उपासना करनी चाहिये (२०-३०) विद्वानों से प्रेम करने वाला व्यक्ति ही विद्या के प्राप्ति और धर्म का आचरण करने के लिये प्रवृत्त हो सकता है (२०-३३) निन्दनीय कर्म करनेवाले भीरु (डरपोक) पुरुषार्थ हीन दरिद्री का संग मनुष्य को नहीं करना चाहिये। (२०-३७) जैसे पृथिवी आदि सभी लोक लोकान्तर सूर्य का आश्रय लेते हैं, चारों ओर परिक्रमा करते हैं वैसे श्रेष्ठ व्यक्ति का आश्रय मनुष्यों को लेना चाहिये (२०-४१) अर्थात् श्रेष्ठ व्यक्तियों के साथ मनुष्य को रहना चाहिये।

**स्त्री शिक्षा और चिकित्सा :-** स्वयंवर विवाह की प्रशंसा करते हुए वेद में लिखा है कि जिस कुल अथवा देश में स्वयंवर विवाह का प्रचलन होता है वहाँ मनुष्य सुखी रहते हैं। (२०-४०) शुद्ध अन्तःकरण के लिये मनुष्य को विद्वानों का संग सत्य शास्त्रों का स्वाध्याय और प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये (२०-४४) राजा अपने राज्य के समीप रहने वाली या दूर रहने वाली प्रजा की रक्षा करता रहे (२०-४८) जो विद्या-धर्म का प्रचार करता है, सुशील और जितेन्द्रिय है। तथा सभी के सुख के लिये प्रयत्न करता है ऐसे व्यक्ति का मनुष्यों का सदा सम्मान करना चाहिये। (२०-५०) समान गुण-कर्म-स्वभाव वाले जो स्त्री-पुरुष पुरुषार्थ करते

हैं उनकी अत्यधिक कीर्ति फैलती है (२०-५५) शारीरिक रोगों की चिकित्सा करनेवाले तथा मानसिक रोगों की चिकित्सा करनेवाले ये दो प्रकार के वैद्य होते हैं। जो दोनों प्रकार के रोगों से मुक्त करके मनुष्यों को सुख प्रदान करते हैं। (२०-५७) जो वैद्य वेदों को पढ़ते हैं वे हस्तक्रिया (आपरेशन-चीरफाडादि) करके वे असाध्य रोगों को शीघ्र ही दूर कर देते हैं। अर्थात् चिकित्सक को शास्त्रीय ज्ञान के साथ साथ क्रियात्मक ज्ञान का भी अभ्यास होना चाहिये। (२०-५९) चिकित्सकों विविध प्रकार की ओषधियों का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्यों के रोगों की निवृत्ति करनी चाहिये। (२०-६३) ऐश्वर्यपूर्वक सुख की वृद्धि के लिये ओषधियों का ज्ञान और उनका सेवन करना चाहिये। (२०-६७)

**धर्माचरण से सुख :-** धर्माचरण की महत्ता का वर्णन करते हुए वेद में लिखा है कि जो लोग धर्मपूर्वक धन कमाते हैं वे प्रशंसा के पात्र होते हैं (२०-६९) अर्थात् उनकी सब जगह प्रशंसा होती है। यजमान पुरोहित के और पुरोहित यजमान के धन की वृद्धि के उपाय करते रहे। (२०-७०) अर्थात् दोनों को एक दूसरे का ध्यान रखना चाहिये। पुरुषार्थ की प्रशंसा करते हुए वेद में सन्देश दिया है कि जो मनुष्य पुरुषार्थ करके धन प्राप्त करते हैं, और उसकी रक्षा करते हैं वे हमेशा उन्नति करते हैं और सुख प्राप्त करते हैं। (२०-७६) गृहस्थियों को विद्वानों, परोपकारियों और सज्जनों का भोजनादि खाद्यपदार्थों से स्वागत-सत्कार करना चाहिये पाखण्डियों का स्वागत नहीं करना चाहिये। (२०-७९) धर्मात्मा अध्यापक और उपदेशक से मनुष्य शिक्षा ग्रहण करके ज्ञान-विज्ञान की सदा उन्नति करता रहे (२०-८४) स्त्रियों को शिक्षा विदुषी स्त्री दिया करे (२०-८५) जिससे स्त्रियों में विद्या और सद्गुणों का प्रचार हो सके। मनुष्यों को भोजन अपने अन्नादि खाद्यपदार्थों को शुद्ध करके बनाना (पकाना) चाहिये (२०-८७) विद्या और धर्म के प्रचार के लिये किसी भी मनुष्य को आलस्य-प्रमाद नहीं करना चाहिये (२०-८९) अध्यापक और उपदेशकों के कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए अन्तिम मन्त्र में उपदेश दिया है कि अध्यापक और उपदेशक लोग सभी लोगों में विद्या और सुख को बढ़ाने का प्रयत्न करे जिससे सभी मनुष्य सुखी हो जाय (२०-९०) अर्थात् विद्या और धर्म का सब जगह प्रचार होने तथा सद्गुणों का आचरण करने, जीवन को शुद्ध पवित्र करने, धर्मपूर्वक धन कमाने, योगाभ्यास करते हुए ईश्वर का साक्षात्कार करने से सभी मनुष्य सुख और आनन्द को प्राप्त कर सकते हैं यह सन्देश के इस अध्याय में दिया गया है।

# अध्याय - २१

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में ६१ मन्त्र हैं। इसमें विद्वानों के कर्तव्य, विमान विद्या, वैद्य (चिकित्सक) के कर्म, ब्रह्मचर्य का समय, ऋतुओं का वर्णन, गायादि पशुओं के दूध की विशेषता, मनुष्यों का व्यवहार, माता पिता का कर्तव्य इत्यादि विषयों का वर्णन है।

**विद्वान् और ब्रह्मचारी :-** इस अध्याय के प्रथम मन्त्र में उपदेश देते हुए लिखा है कि विद्यार्थियों को ज्ञान देने तथा परीक्षा लेने के लिये मनुष्यों को विद्वानों के लिये प्रयत्न करना चाहिये। (२१-१) छात्र गुरुजनों को नम्रता पूर्वक प्रणाम किया करें तथा उनका अपमान न करें, शिक्षक शिष्यों के साथ छल कपट न करें (२१-२) किसी भी मनुष्य को विद्वानों का अपमान नहीं करना चाहिये। (२१-३) पृथिवी माता के समान सबका पालन करती है। (२१-५) विविध प्रकार के विमान अर्थात् जलयान-वायुयानादि का निर्माण करके देश देशान्तरों में धन प्राप्ति के लिये मनुष्य को जाना चाहिये (२१-६) विद्वान् विद्या दान से सभी मनुष्यों को सुखी करे (२१-११) विद्या और धर्म से सम्पन्न व्यक्ति (धर्मात्मा-विद्वान्) सभी को सुख विद्या ऐश्वर्य प्राप्त करा सकते हैं (२१-१४) मनुष्य को ब्रह्मचर्य धारण करके अपना बल बढ़ाना चाहिये (२१-२०) पृथिवी के समान दूसरों का कल्याण करना चाहिये (२१-१७) पथ्य और ओषधियों के द्वारा रोग रहित होकर पुरुषार्थ करके धन प्राप्त करना चाहिये (२१-२२) जो व्यक्ति ४४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करके शरीर आत्मा का बल बढ़ाते हैं वे वसन्त-ग्रीष्म -वर्षादि सभी ऋतुओं में सुख प्राप्त करते हैं, वे भाग्यशाली होते हैं तथा सब लोग उनके संग से लाभ उठाते हैं (२१-२४) इसी प्रकरण में शरद् ऋतु (२१-२६) हेमन्त ऋतु (२१-२७) शिशिर ऋतु (२१-२८) आदि सभी ऋतुओं का वर्णन हैं। ब्रह्मचर्य के महत्त्व के बारे में लिखा है इसका पालन करने वाला व्यक्ति शारीरिक और आत्मिक बल प्राप्त करता है। (२१-३२)

**दुग्धमहिमा और सुख प्राप्ति :-** मनुष्य को ऐसा मकान बनाना चाहिये जिसमें सूर्य का प्रकाश आता रहे, गृह निर्माण के विषय में वेद ने यह निर्देश दिया है। (२१-३४) चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा स्त्री ग्रहण करके खाद्य पदार्थों का विशेष ध्यान रखे, जिससे पारिवारिक जनों का स्वास्थ्य ठीक रह सके (२१-३७) ब्रह्मचर्य का पालन, धर्म का आचरण, विद्या प्राप्ति और सत्संग से सुख प्राप्त होता है (२१-३८) गायादि विविध पशुओं के महत्त्व का वर्णन (४१-४२-४३) मन्त्रों में किया गया है। सायंकाल और प्रातःकाल मनुष्य को आलस्य और प्रमाद छोड़कर ईश्वर की उपासना। (सन्ध्या) करनी चाहिये (२१-५०) माता और अध्यापिका तथा उपदेशिका ये तीनों बालिकाओं को सुशिक्षित करके सुखी करती हैं (२१-५४)

धर्मपूर्वक धन कमाने वाला व्यक्ति सुखी रहता है। (२१-५५) यह सन्देश भी वेद ने दिया है। वाणी के लिये भेड़, उदर रोग के लिये बकरी तथा सुख एवं ऐश्वर्य के लिये गाय के दूध का सेवन करना चाहिये, यह उपदेश (२१-५९) दिया है, गायादि पशुओं के दूध तथा दूध से बने हुए खाद्य पदार्थों का सेवन करने से मनुष्य बलवान् और सुखी रहता है। (२१-६०) जो वेदादि शास्त्रों को पढ़कर परिश्रम करके दूसरों को विद्या प्रदान करते हैं मनुष्यों को सदा उनका सम्मान सत्कार करना चाहिये। (२१-६१) इस प्रकार मनुष्य सुख कैसे प्राप्त करे ? यह सन्देश इस अध्याय में दिया है।

# अध्याय - २२

**जीवन की आयु तथा बल :-** इस अध्याय में ३४ मन्त्र है। इस अध्याय के प्रारम्भ में आयु की सुरक्षा के लिये परमात्मा से प्रार्थना की गयी है (२२-१)। युक्ति पूर्वक जीवन व्यतीत करने पर मनुष्य पूर्ण आयु का भोग करता है। (२२-२) मनुष्यों का जीवन जल और अग्नि दोनों के यथोचित रहने पर शरीर सुरक्षित रहता हैं (२२-३) मनुष्य अच्छी शिक्षा, ब्रह्मचर्य के पालन और विद्वानों के संग से शारीरिक और आत्मिक बल को बढ़ाना चाहिये (२२-४)। मनुष्यों को पशुओं की रक्षा करनी चाहिये (२२-५), यज्ञ के द्वारा मनुष्य को अपना जीवन स्वस्थ और प्राकृतिक पर्यावरण को शुद्ध रखना चाहिये (२२-६) यज्ञ के द्वारा सभी प्राणियों को सुख प्राप्त होता है यह विवेचन किया है। (२२-८)

**उपासना-यज्ञ एवं राष्ट्र :-** मनुष्य को ईश्वर की उपासना करके परमात्मा से श्रेष्ठ (सद्) बुद्धि की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करनी चाहिये (२२-९) सद् बुद्धि की प्राप्ति ईश्वर की उपासना से प्राप्त होती है, जड़ पदार्थों की स्तुति से बुद्धि की प्राप्ति नहीं होती है (२२-११) यह सन्देश वेद ने दिया। धर्म अर्थ काम और मोक्षादि के लिये ईश्वर की उपासना करनी चाहिये (२२-१३) अग्नि में हवि डालने से उसकी शक्ति हजारों गुणा बढ़ जाती है उससे प्राणियों को सुख मिलता है। (२२-१७) इसलिये जो सभी के सुख के लिये यज्ञ करते हैं वे भी सुख प्राप्त करते हैं। (२२-२०) देश का ब्राह्मण तेजस्वी, क्षत्रिय शूरवीर हो, गायें दूध देने वाली, बैल बलवान्, घोड़े शीघ्रगामी, महिला नगरों महानगरों की देख रेख करने वाली अध्यक्षा हों, पुत्र वीर, सभ्य, ओषधियां रोगों को दूर करने वाली हों आवश्यकतानुसार वर्षा हो तथा हमारे देश में योग और क्षेम अर्थात् अप्राप्त वस्तुओं की प्राप्ति होती रहे तथा प्राप्त वस्तुओं की सुरक्षा भी रहे यह प्रार्थना की गयी है (२२-२२) यज्ञ से शुद्ध जल-अन्न-फल ओषधि आदि तथा पूर्ण आयु और स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होता है। (२२-२३)

**संसारिक सुख और मोक्ष :-** चार-दिशाएं चार उपदिशाएं तथा दो ऊपर-और नीचे ये दस दिशाएं होती हैं। (२२-२४) विधिपूर्वक यज्ञ करने से सब का हित होता है। (२२-२६) प्राण आदि की शुद्धि के लिये यज्ञ करना चाहिये (२२-३०) जो मनुष्य प्रतिदिन यज्ञ करते हैं और अपनी प्रकृति (शारीरिक स्थिति) के अनुसार भोजन करते हैं वे रोग रहित होकर पूरी आयु अर्थात् सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं (२२-३१) यह संकेत वेद में दिया है। जो मनुष्य यज्ञ करते हैं, अपने जीवन को यज्ञमय बनाकर ईश्वर की उपासना करते हैं वे इस जन्म में और अगले जन्म में भी सुख प्राप्त करते हैं (२२-३३) पुरुषार्थ करने, प्रीतिपूर्वक दूसरों के साथ रहने तथा ईश्वर की उपासना से सांसारिक सुख और मोक्ष सुख प्राप्त होता है (२२-३४) यह उपदेश वेद में दिया है।

***टिप्पणी :-***

*१. आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ---- योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥* (२२-२२)
*२. आयुर्यज्ञेन कल्पताम् ---- यज्ञो यज्ञेन कल्पतां स्वाहा ॥* (२२-३३)

# अध्याय - २३

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में ६५ मन्त्र हैं। इसमें परमात्मा की महिमा, सृष्टि की विशेषता, योग के लाभ, शास्त्रों के पठन-पाठन तथा उपदेश, स्त्री-पुरुष का परस्पर में व्यवहार, राजा-प्रजा के गुणादि विषयों का वर्णन है।

**ईश महिमा :-** परमात्मा सृष्टि की उत्पत्ति-पालन और प्रलय करता है जीवों को कर्मों का फल देता है। (२३-१) परमेश्वर दो पैर वाले (मनुष्य) और चार पैर वाले (पशुओं) का रचयिता तथा स्वामी है। (२३-३) जो मनुष्य परमात्मा की उपासना करते हैं वे ज्ञानादि सद्गुणों से सम्पन्न होते हैं (२३-५) परमेश्वर के गुणों की चर्चा करने के पश्चात् प्रश्नोत्तर के माध्यम से (२३-९ तथा १०) समझाया गया है कि आकाश में सूर्य किसी दूसरे ग्रह उपग्रह की सहायता के बिना अकेला अपने प्रकाश से प्रकाशित होता है तथा पृथिवी चन्द्रमादि सभी लोक लोकान्तर सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं शीत (सर्दी) को दूर करने का साधन अग्नि हैं। यह सन्देश वेद (३-१०) में दिया है इसके पश्चात् वर्णन किया है कि प्राणियों के[1] विश्राम के लिये रात्री होती है। (२३-१२) मनुष्य को स्वयं ही यज्ञ करना चाहिये जिससे उसकी महिमा नष्ट न हो (२३-१५)

**राजा और माता पिता :-** धन को प्राप्त करने के बाद भी मनुष्य को पुरुषार्थ करना चाहिये क्योंकि अधिक धन प्राप्त होने पर मनुष्य आलसी हो जाता है इसलिये वेद ने (२३-२३) पुरुषार्थ करने का उपदेश दिया है। परमेश्वर सभी गिनने योग्य पदार्थों का स्वामी है, सब कुछ उसके अन्दर (गर्भ) में समाया हुआ है। (गणानां त्वागणपतिं हवामहे ... २३-१९) इस मन्त्र में परमात्मा को सर्वव्यापक और संसार के स्वामित्व के रूप में बताया गया है। राजा कभी मिथ्या प्रतिज्ञा न करें और कटुवचन न बोले (२३-२३) माता पिता को सन्तान के द्वारा यश प्राप्त होता है। (२३-२५) राजा को कभी भी ईर्ष्या द्वेष और व्यभिचार आदि कर्म नहीं करने चाहिये (२३-३०) जो विषयासक्ति से दूर रहकर धर्मपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं मनुष्यों को उनका सत्कार करना चाहिये (२३-३४)

**वर्ण-वाणी और यज्ञ :-** विद्यार्थियों की शिक्षा के विषय में दो मन्त्रों में वर्णन किया (२३-३८ तथा ३९) ब्राह्मण पति-पत्नी पढ़ावें, क्षत्रिय (पति-पत्नी) प्रजा का गया है। पालन, वैश्य (पति-पत्नी) व्यापारादि कार्य तथा शूद्र (पति-पत्नी) सेवा कार्य करें यह उपदेश दिया है (२३-४०) वाणी का महत्त्व बतलाते हुए स्पष्ट किया है कि वाणी का मूल्य निर्धारित नहीं किया जा सकता है (२३-४८) अनेक मन्त्रों (४८-६२) में विविध प्रश्नोत्तर के माध्यम से अनेक विषयों को स्पष्ट किया है। संसार का मध्य केन्द्र बिन्दु यज्ञ है[2], इसका उल्लेख करते हुए यज्ञ की महत्ता की ओर संकेत किया है। जैसे विद्वान् परमात्मा को जानकर उसकी उपासना करते हैं वैसे ही मनुष्यों को करना चाहिये (२३-६४) यह निर्देश देकर अन्त में योगाभ्यास से परमात्मा को प्राप्त करना चाहिये (२३-६५) वह उपदेश दिया है।

**टिप्पणी :-**

1. *सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा .... अग्नि र्हिमस्य भेषजम्* .. (२३-१०)
2. *अयं यज्ञो भुवनस्य नाभि : ....* (२३-६२)

# अध्याय - २४

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में ४० मन्त्र हैं। इसमें पशुओं पक्षियों तथा सर्प आदि प्राणियों के बारे में सन्देश दिया गया है।

**पशु और ऋतु विज्ञान :-** मनुष्य को गाय-घोड़े-भेड़ बकरी आदि पशुओं की रक्षा करके उनसे लाभ उठाना चाहिये (२४-१) जो मनुष्य पशुओं की रक्षा करते हैं और उनका यथोचित उपयोग लेते हैं, शिल्प विद्या के द्वारा विविध यानों (जलयान-वायुयानादि) निर्माण कर उनका उपयोग करते हैं वे धनवान् होते हैं (२४-५) जो मनुष्य पशुओं का पालन करते हैं वे धनवान् ही नहीं अपितु सुख भी प्राप्त करते हैं (२४-७) मनुष्य को वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा-शरद्-हेमन्त-शिशिर आदि सभी ऋतुओं के अनुसार दिनचर्या और खाद्य पदार्थों का सेवन करके रोग रहित होना चाहिये तथा धर्म,अर्थ,काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिये यह उपदेश वेद (२४-११) में दिया है। शिल्प विद्या के विशेषज्ञों को अग्नि-जल-वायु आदि पदार्थों से विविध यन्त्रों का निर्माण करके बहुविध कार्यों को सम्पन्न करना चाहिये। (२४-१४)

**पशु-पक्षियों के गुण :-** भिन्न भिन्न ऋतुओं में भिन्न भिन्न प्रकार के पक्षी प्राकृतिक आनन्द लेते हैं इस विषय का ज्ञान मनुष्य प्राप्त करे (२४-२०) यह सन्देश दिया गया है। हंस, तोता, बगुला, कबूतर, सारस-चक्रवाक (चकवा चकवी) आदि पक्षियों की रक्षा तथा पालन परिश्रम पूर्वक करना चाहिये (२४-२२) पशु-पक्षी-दिन-रात के काल विभाग को जानते हैं (२४-२५) मूषक (चूहा) भूमि खनन करता है, भूमि के विषय की जानकारी मनुष्य को भी करनी चाहिये (२४-२६) पशु पक्षियों के बारे में विशेष जानकारी प्राप्त करने से मनुष्य इनका यथोचित लाभ ले सकता है (२५-२८) मनुष्यों को श्रृगाल (सियार) सांपादि के बारे में भी जानकारी रखनी चाहिये (२४-३१) मनुष्य मेंढ़क-चूहा-सांप-अजगर-कबूतर-उल्लू-खरगोश-भेड़ादि के विषय में विशेष ज्ञान प्राप्त करे (२४-३८) यह सन्देश देकर मनुष्य को पशुओं तथा पक्षियों के क्रिया कलापों को जानकर उनसे लाभ उठाना चाहिये। इस अध्याय के अन्तिम मन्त्र में कुत्ते, हिरण, गधे-व्याघ्र-सिंहादि पशुओं का तथा पक्षियों का उल्लेख है। पशु-पक्षियों में भी अनेक गुण विद्यमान होते हैं उनके विषय में ज्ञान प्राप्त करके उन सभी पशु-पक्षियों से मनुष्य को लाभ उठाना चाहिये तथा दूसरों का कल्याण करना चाहिए यह सन्देश वेद के इस अध्याय में दिया है।

# अध्याय - २५

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में ४८ मन्त्र हैं। सांसारिक पदार्थों के गुण, पशु पक्षियों का पालन, आत्मरक्षा, परमेश्वर से प्रार्थना, यज्ञ की प्रशंसादि विविध विषयों का वर्णन इस अध्याय में हैं।

**शिक्षक तथा ईश्वर :-** अध्यापक अपने शिष्यों को आहार-विहार ब्रह्मचर्य का पालन, शिक्षा ग्रहणादि विषयों के बारे उपदेश दिया करे (२५-१) गुरुजनों से मनुष्य उत्तम गुणों की प्राप्ति करते रहें (२५-३) विविध प्रकार के पदार्थों का ज्ञान और उनके प्रयोग के विषय में मनुष्य को जानने का यत्न करना चाहिये। (२५-५) मनुष्य को अपने शारीरिक अंगों को मजबूत बनाना चाहिये (२५-६) जो मनुष्य यथोचित आहार विहार करके शरीर को रोग रहित और सुदृढ़ करता है वह धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष को प्राप्त करता है यह सन्देश वेद ने दिया है (२५-८), सूर्यादि सभी लोक लोकान्तरों को परमेश्वर ने बनाकर अपने गर्भ (अन्दर) में धारण कर रखा है उसकी उपासना करनी चाहिये। (२५-१०) परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है कि वह शरीर आत्मा और समाज का बल देने वाला है। उसके सानिध्य में रहना अमृत है और दूर होना मृत्यु के निकट पहुंचना है। (२५-१३) परमेश्वर निराकार सर्वशक्तिमान् सुख और ऐश्वर्य देनेवाला है उसकी उपासना करनी चाहिये। (२५-१८) मनुष्य को असत्य नहीं बोलना चाहिये (२५-२०) कानों से अच्छे शब्द सुनें, आंखों से अच्छी वस्तु देखें, हमारा शरीर मजबूत हो, जीवन दूसरों के हित-कल्याण के लिये हो, यह प्रार्थना की गयी है। पुत्र के भी पुत्र हो जायं अर्थात् पुत्र भी पिता बन जायं यह प्रार्थना वेदमन्त्र में की गयी है। (२५-२२)

**पशु रक्षा और मांस निषेध :-** मनुष्य गाय-घोड़े आदि के साथ साथ बकरी-भेड़ादि पशुओं की भी वृद्धि करे (२५-२६) यज्ञ से वर्षा होती है तथा वायु-जल की शुद्धि होती है (२५-२८) घोड़े को युद्ध के लिये अच्छी तरह शिक्षित करना चाहियें (२५-३१) पशुओं को बांधने के स्थान पर मच्छर नहीं होने चाहियें (२५-३५) यदि कोई मांस खावे तो राजा उसे दण्ड दे (२५-३६) यह निर्देश वेद ने स्पष्ट रूप से दिया है। पशुओं की रक्षा करनी चाहिये (२५-३९) मनुष्य सुख कैसे प्राप्त करता है इस विषय में उपदेश दिया है कि जो जितेन्द्रय है, ब्रह्मचर्य का पालन करता है, घोड़े के समान बलवान् और पुरुषार्थ से धन प्राप्त करता है वह सुखी रहता है (२५-४५) विद्यार्थी सदा अच्छा आचारण रखे, सभी के साथ मित्रता पूर्वक रहे ऐसी शिक्षा अध्यापक छात्रों को देते रहे और समय समय अध्यापित विषय की परीक्षा भी शिक्षक लेते रहें यह निर्देश इसके अन्तिम मन्त्र (२५-४८) में दिया है।

**टिप्पणी :-**

१. *य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते .....*(२५-१३)
२. *भद्रं कर्णेभि : शृणुयाम देवाः .....देवहितं यदायुः ॥* (२५-२१)
३. *शत मिन्नु .....पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति .....* (२५-२२)
४. *तं त्वा शोचिष्ठ दीदिव ..... समस्मात् ॥* (२५-४७)

# अध्याय - २६

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में २६ मन्त्र हैं। इसमें पुरुषार्थ का फल, सभी मनुष्यों को वेद पढ़ने का अधिकार है, परमेश्वर-यज्ञ-अग्नि आदि पदार्थों के गुण, सत्य तथा उत्तम गृह निर्माण इत्यादि विषयों का वर्णन है।

**वेदों का ज्ञान तथा प्रजा को सुख :-** यदि मनुष्य अग्नि-जल-वायु आदि पंच भौतिक पदार्थों को जानकर उनका यथोचित प्रयोग करे तो भौतिक उन्नति और सुखों को प्राप्त कर सकता हैं। (२६-१) परमात्मा की कल्याण करने वाली वेदवाणी को सभी स्त्री पुरुष पढ़ और सुन सकते हैं। (२६-२) परमात्मा सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, जो वेदों का प्रकाश करनेवाला सृष्टि कर्ता है वह योगाभ्यास से प्राप्त हो सकता है। (२६-३) जैसे सूर्य अन्धकार को दूर करता है वैसे ही विद्वान् अविद्या अन्धकार को दूर करके सत्य का प्रकाश करके मनुष्यों का कल्याण करें। (२६-८) जो राजा दुष्टों को दण्ड देकर प्रजा को सुख देता है ऐसे राजा का सम्मान प्रजा को करना चाहिये यह सन्देश (२६-१०) दिया हैं राजा प्रजा को दरिद्रता (निर्धनता) का कष्ट न भोगना पड़े ऐसा प्रयत्न राजा को करना चाहिये। (२६-१२)

**उपासना और सुख :-** जो विद्वान् एकान्त में बैठकर शास्त्रों के विषय में चिन्तन करते हैं वे उन शास्त्रों के विशेष ज्ञाता होते हैं। जिन घरो में सूर्य का प्रकाश और वायु जा आ सके ऐसे गृहों का निर्माण मनुष्य को करना चाहिये। (२६-१६) परमात्मा ने वेदों का ज्ञान, तथा सुख के लिये खाने-पीने योग्य पदार्थों को एवं धन प्रदान किया है ऐसे परमात्मा की उपासना मनुष्यों को सदा करनी चाहिये। (२६-१८) मनुष्य को पशुओं का पालन और वसन्त आदि ऋतुओं के अनुसार दिनचर्या का पालन (२६-१९) तथा लड़कियों की शिक्षा का सुप्रबन्ध करना चाहिये (२६-२०) जो चिकित्सक अत्युत्तम आहार पथ्य सेवन से रोग रहित होकर अन्यों के भी रोगों को दूर करता है वह प्रशंसा का पात्र होता है। (२६-२२) ऐसे चिकित्सक की सभी मनुष्य प्रशंसा करते हैं। मनुष्य को सदा ज्ञान-विज्ञान के लिये पुरुषार्थ करते रहना चाहिये (२६-२३) जो मनुष्य रोगनाशक ओषधियों का सेवन करते हैं वे धनाढ्य होकर शरीर और आत्मा से पवित्र होते हैं (२६-२५) जो ज्ञान विज्ञान से युक्त होते हैं तथा सुन्दर घरों में रहकर चिन्तन करते हैं वे सुखी रहते हैं (२६-२६) यह उपदेश इस अध्याय के अन्तिम मन्त्र में दिया है।

**टिप्पणी :-**

१. *यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः .....*(२६-२)

२. *उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम् धिया विप्रो अजायत।* (२६-१५)

# अध्याय - २७

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में ४५ मन्त्र हैं। इसमें सत्य की प्रशंसा, अनिष्ट की निवृत्ति, मित्र का विश्वास, ऐश्वर्य की वृद्धि, सद्‌गुणों की प्राप्ति सुन्दर वाणी का महत्त्व इत्यादि विषयों का वर्णन है।

**राजा-तथा पंचभूत :-** आप्त (विद्वान्) पुरुष सदा सत्य विद्या और उत्तम कर्मों को करने का उपदेश मनुष्यों को दिया करे जिससे मनुष्यों को स्वास्थ्य और विद्या का लाभ प्राप्त हो सके (२७-१) राजा अपने राज्य के प्रजा को सुखी-रखने के लिये अच्छे नियम बनावे (२७-४) राजा न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करे, वीर और बहादुर व्यक्तियों को सेना में रखे (२१-६) जो राजा न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करता है उसकी कीर्ति सब ओर फैलती है। (२७-७) अग्नि की ज्वाला (लपट) सदा ऊपर उठती है मनुष्य को अग्नि तत्त्व का विशेष ज्ञान प्राप्त करके इससे लाभ लेना चाहिये। (२७-११) वायु के विना कोई गति नहीं कर सकता है, वायु के विषय में भी विशेष ज्ञान प्राप्त करना चाहिये (२७-१२) इन भौतिक पदार्थों का ज्ञाता बहुत धन से सम्पन्न होता है (२७-१५) अग्नि विद्या से विश्व में उन्नति करने का निर्देश भी दिया है (२७-१८) वायु सुख का मूल है तथा उत्तम सन्तान भी सुख का साधन है (२७-२३) इसलिये मनुष्यों को अग्नि-वायु आदि पंचभूतों तथा इनके कार्यों का ज्ञान करना चाहिये (२७-२५)

**वायु-ईश्वर और आप्त (विद्वान्) :-** मनुष्यों को सबके द्रष्टा-धर्ता और अधिष्ठिता परमात्मा को प्राप्त करने के लिये नित्य योगाभ्यास करना चाहिये।(२७-२६) वायु की विशेषताओं का अनेक मन्त्रों (२८-२९-३०-३१-३२-३३-३४) में वर्णन है। वायु शरीर में विविध प्राणों के रूप में है, शरीर में रस-रक्तादि के प्रवाह में, इन्द्रियों की गतिशीलता में तथा पृथिवी आदि लोक लोकान्तरों की गति में वायु का विशेष योगदान है। वायु के ज्ञान के हेतु इन मन्त्रों पर गंभीर अध्ययन और चिन्तन करना चाहिये। परमात्मा के समान शुद्ध पवित्र न कोई है, न होगा इस लिये उसी की उपासना करनी चाहिये। (२७-३६) जो मनुष्य अपने मित्रों का रक्षक होता है, अनाथों की रक्षा के लिये प्रयत्न करता है वह असंख्य धन को प्राप्त करता है (२७-४१) मनुष्य को उत्तम वाणी का प्रयोग करके यज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिये, मित्रों तथा विद्वानों का सत्कार करना चाहिये। (२७-४२) आप्त पुरुष के व्यक्तित्व के विषय में संकेत दिया है कि आप्त पुरुष (विद्वान्) व्यक्ति अपने समय को व्यर्थ नष्ट नहीं करते हैं। जो लाभदायक और हितकारक नियमों का पालन करते हुए करने योग्य शुभ कर्मों को करते हैं उनका समय अच्छी प्रकार से व्यतीत होता है और वे सुखी रहते हैं तथा दूसरों को भी सुख देते हैं। (२७-४५)

# अध्याय - २८

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में ४६ मन्त्र हैं। इसमें होता के गुण-कर्तव्य-यज्ञ की व्याख्या विद्वानों की प्रशंसा इत्यादि विषयों का वर्णन है।

**यज्ञ और होता :-** इस अध्याय के प्रथम मन्त्र में यज्ञ के महत्त्व का वर्णन करते हुए लिखा हैं कि मेघ (बादल) के निर्माण और जल-वायु की शुद्धि के लिये हवन करना चाहिये (२८-१) राजा पिता के समान प्रजा की रक्षा और पालन करे (२८-३) होता अर्थात् यज्ञ करने वाला विद्या और धर्म के द्वारा पदार्थों का सदुपयोग करके सभी को सुख देता है। (२८-५) जैसे श्रेष्ठ वैद्य (चिकित्सक) ओषधियों से रोगों को दूर करके मनुष्यों को स्वस्थ एवं सुखी करता है वैसे ही होता को प्रयत्न करना चाहिये (२८-७) उपदेशक और वैद्य को अति उत्तमवाणी का प्रयोग करना चाहिये (२८-८) यजमान यज्ञ वेदि में समिधाओंका चयन करके यज्ञ करके सभी प्राणियों को तृप्त अर्थात् प्रसन्न करे (२८-१२) मनुष्य को प्रातःकाल योगाभ्यास करके रागादि दोषों से निवृत्त होकर सुख प्राप्त करना चाहिये। (२८-१५)जो मनुष्य दोष-गुण का विवेचन करने वाली वाणी को धारण करता है वह धनैश्वर्य को प्राप्त करता है (२८-१८) इस प्रकार वाणी की महत्ता का सन्देश वेद ने दिया है। जैसे माता गर्भस्थ शिशु और उत्पन्न हुए बालक की रक्षा करती है वैसे ही होता (यज्ञ कर्ता) सबकी रक्षा करे(२८-२५) यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है।

**उत्तम गृह तथा आप्त विद्वान् :-** जो मनुष्य, वेद पढ़ने वाले, ब्रह्म में आस्था रखनेवाले योगी व्यक्ति का सत्संग करते हैं वे अभीष्ट (इच्छित) सुखों को प्राप्त करते हैं। (२८-२७) पुरुषार्थ करनेवाला व्यक्ति विद्या कीर्ति और धन को प्राप्त करने में सफल होता है। (२८-३०) वेदों का अभ्यास करने से बुद्धि बढ़ती है, इसलिये मनुष्य सभी विद्याओं को ज्ञान वेदों से प्राप्त कर लेता है (२८-३५) घर के विषय में वेद में स्पष्ट निर्देश दिया है कि घर में सूर्य का प्रकाश और वायु का गमनागमन होना चाहिये जिससे बल और आरोग्यता की प्राप्ति होती है। (२८-३६) पुरुष बालकों को तथा स्त्रियाँ कन्याओं को शिक्षा दें। यह उपदेश भी वेद (२८-३८) में दिया है। विद्वानों को आपस में ईर्ष्या द्वेष न करके एक दूसरे की हानि नहीं करनी चाहिये अपितु उन्नति करनी चाहिये। यह निर्देश वेद में (२८-४२) दिया है। मनुष्यों को धर्म पूर्वक धन कमाकर दरिद्र व्यक्तियों के दुःखों को दूर करना चाहिये (२८-४४)। परमेश्वर ने कृपा करके सब पदार्थों की उत्पत्ति की है वैसे ही मनुष्यों को दूसरे प्राणियों का कल्याण करके, पुरुषार्थ और धर्म का आचरण करना चाहिये (२८-४५)। इस अध्याय के अन्तिम मन्त्र में सन्देश दिया है कि रसोइये को अन्न दुग्धादि उत्तम पदार्थों से भोजन बनाना चाहिये जो भोजन करनेवाले के लिये कष्टदायक न हो, शीघ्र उसका पाचन (हजम) हो जाय तथा शरीर बलवान् और नीरोग रहे।

# अध्याय - २९

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में ६० मन्त्र हैं। इसमें अग्नि, विद्वान् घर-प्राण अपानादि, अध्यापक-उपदेशक, शिल्प विद्या, शस्त्र-अस्त्र, सेना-पशुओंके गुण-यज्ञ के लाभ इत्यादि विषयों का वर्णन हैं।

**विज्ञान और विमान :-** अग्नि और जल के संयोग से वाष्प (भाप) बनती है इससे यान शीघ्र गमन करते हैं (२९-२) अर्थात् वाष्प और विविध यान विषयक विज्ञान के लिये मनुष्य को प्रयत्न करना चाहिये। मनुष्य को ऐसे भवनों का निर्माण करना चाहिये जिसमें शुद्ध वायु का आवागमन हो, प्राण वायु से घरवालों का स्वास्थ्य ठीक रहता है और वे सुखी रहते हैं (२९-६) विद्या के जिज्ञासुओं को शिक्षक विविध शास्त्रों का ज्ञान दिया करे (२९-१०) परमेश्वर की बनायी हुई सृष्टि के विषय में यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य सुख प्राप्त करता है (२९-१३) इसलिये ज्ञान विज्ञान के लिये मनुष्यों को सदा प्रयत्न करना चाहिये। अत्यधिक वेग से चलनेवाले विविध प्रकार के विमानों का निर्माण करके, उनसे लाभ उठाना चाहिये। (२९-१७) घोड़ो को सुशिक्षित करके यात्रा और युद्ध में उनका उपयोग करना चाहिये (२९-२३) जैसे दीपक से घर प्रकाशित होता है वैसे ही विद्वानों से कुल प्रकाशित होता है अर्थात् विद्वानों के घर में आने जाने से पारिवारिक जन सद्गुणों से सम्पन्न रहते हैं तथा उनमें सद् भावना रहती है जिससे परिवार में सुख ऐश्वर्य की वृद्धि होती है। (२९-२५) जो स्वयं पवित्र नहीं होते हैं वे दूसरों को भी पवित्र नहीं कर सकते हैं (२९-२७)।

**शिल्प विद्या और वैज्ञानिक प्रगति :-** शिल्पविद्या से मनुष्यों को उपकार करना चाहिये (२९-३३)। शिल्प विद्या की विशेषताओं को जानकर मनुष्य उनका प्रयोग करें (२९-३४)। धनुर्विद्या को जानना चाहिये (२९-४०) जो राजा-हाथी-घोड़े -बैल आदि के उपयोग करने की शिक्षा देता है, विविध प्रकार के यानों का निर्माण कराकर शत्रुओं को जीतने की इच्छा रखता है उसकी सदा जीत होती है (२९-४४)। राजा को संकेत दिया है कि शत्रुओं से न डरनेवाली सेना का निर्माण करो जिससे विजय प्राप्त करते रहो (२९-४८)। राजा के साथ साथ राजा की पत्नियों को विमान-रथ में घोड़ों को चलाने आदि का ज्ञान होना चाहिये (२९-५०)। राजा और राजपुरुष दुर्व्यसनों से दूर रहें, दुष्टों को दण्ड दें, सज्जनों का सत्कार करें जिससे वे सुख प्राप्त करेंगे (२९-५६)। जो राजा या सेनापति विज्ञान के विविध यन्त्रों द्वारा शत्रु पर दूर से ही अस्त्र फेंककर प्रहार करता है वैज्ञानिकों को दूर देशों से बुलाकर स्वागत करता है अर्थात् अपने राज्य में वैज्ञानिक प्रगति के लिये विविध प्रयत्न करता है वह राजा राज्य के मनुष्यों को सुख प्रदान करता है। वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिये राजा और विद्वानों को सदा प्रयत्न करना चाहिये (२९-५४)।

# अध्याय - ३०

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में २२ मन्त्र हैं। इसमें परमेश्वर के स्वरूप और राजा के कर्तव्य, श्रेष्ठ व्यक्तियों के सत्संग से लाभ, स्त्री-पुरुष के संवादादि विषयों का वर्णन है।

**ईश्वर और राजा :-** जो व्यक्ति अपने राज्य में शिक्षा की समुचित व्यवस्था करनेवाला और राज्य की उन्नति करने में समर्थ है, धर्मात्माओं की रक्षा करता हो, शुभ गुणों से युक्त और ईश्वर का उपासक हो वही राजा बनने के योग्य है यह सन्देश वेद (३०-१) ने दिया है। परमात्मा सविता अर्थात् संसार का बनानेवाला है, वह हमें सद्बुद्धि प्रदान करे (३०-२) यह प्रार्थना की गयी है। इसके पश्चात् हमारे जीवन में दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःख दूर हों तथा हमें सद्गुण और सुख प्राप्त हों (३०-३) यह प्रार्थना परमात्मा से की गयी है। ब्राह्मण ज्ञान-विज्ञान के लिये, क्षत्रिय राज्य की व्यवस्था प्रजापालन के लिये, वैश्य-वाणिज्य कर्म के लिये और शूद्र तप अर्थात् तीनों वर्णों के शारीरिक सहयोग (भोजन बनाना वस्त्र धोना-सफाई आदि कर्म) के लिये प्रयत्न करे। (३०-५) राजा धर्मात्माओं का उत्साह बढ़ावे, शिल्प विद्या (वैज्ञानिक प्रगति) के लिये प्रयत्न किया करे (३०-६) जैसे परमेश्वर पाप करनेवालों को दण्ड देता है, वैसे राजा भी दिया करे (३०-९) राजादि सत्पुरुषों को दुष्टों (चापलूसों) का संग छोड़कर श्रेष्ठ पुरुषों (सज्जनों) का संग करना चाहिये। (३०-१३)

**दण्ड व्यवस्था और राजा :-** जो लोग क्रोध के कारण दूसरों को कष्ट देते हैं, धर्म के विरुद्ध आचरण करते हैं, ऐसे व्यक्तियों को राजा दण्ड दे, यह निर्देश वेद ने दिया है (३०-१४)। इससे अगले मन्त्र में संवत्सर के १२ भेद होते हैं (३०-१५) यह लिखा है। मिट्टी के बर्तन बनानेवाले तथा अन्य कर्म करनेवालों की राजा रक्षा करे (३०-१६)। जो आलस्य नहीं करते हैं वे सुख पाते हैं। (३०-१७)

जिस राजा के राज्य में गो हत्या करने वाले को दण्ड दिया जाता है, वह राजा राज्य करने में समर्थ और योग्य है (३०-१८)। मनुष्यों को झूठ, हत्या-चोरी-व्यभिचार आदि दोषों को छोड़कर संगीत विद्या की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये (३०-२०)। पृथिवी पर विचरण करनेवाले सर्पादि विषैले प्राणियों से मनुष्यों को अपनी रक्षा करनी चाहिये (३०-२१)। जैसे विद्वान् मनुष्य छोटे बड़े सभी पदार्थों के विषय में ज्ञान रखते हैं वैसे ही मनुष्यों को भी ज्ञान रखना चाहिये तथा उन पदार्थों का यथोचित प्रयोग करके उनसे लाभ उठाना चाहिये (३०-२२) यह सन्देश यहां दिया है।

**टिप्पणी :-**

१. *तत् सवितुर्वरेण्यम् ----- प्रचोदयात्* (३०-२)
२. *विश्वानि देव सवित ----- तन्न आसुव* (३०-३)
३. *ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं ---- मागधम्* (३०-५)

# अध्याय - ३१

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में २२ मन्त्र हैं। ईश्वर के स्वरूप तथा, सृष्टि का वर्णन, और चारों वेदों का ज्ञान, ब्राह्मणादि चारों वर्णों के कर्म आदि विविध विषयों का वर्णन है। यह अध्याय पुरुष सूक्त नाम से भी प्रसिद्ध है।

**ईश्वर का स्वरूप :-** परमात्मा को पुरुष कहते हैं क्योंकि वह 'पुर्' अर्थात् ब्रह्माण्ड में विद्यमान है इसलिये उसे पुरुष कहते हैं। शरीर को भी 'पुर्' कहा जाता है और उसमें रहनेवाले जीवात्मा को भी पुरुष कहते हैं। दोनो ही पुरुष है किन्तु शरीर में रहनेवाला पुरुष (जीवात्मा) दो हाथ अर्थात् दश अंगुलियों वाला है और ब्रह्माण्ड में रहनेवाला पुरुष (परमात्मा) दश अंगुलियों से पृथक् है अर्थात् उसके अनन्त हाथ-अनन्त पैर-अनन्त शिर और अनन्त आंखे हैं जबकि शरीर में वाले पुरुष (जीवात्मा) के एक शिर और दोआंखे तथा दो पैर है, यहीं दोनों में अन्तर है (३१-१)। अन्य शास्त्रों भी परमात्मा को जीवात्मा से पृथक् बतलाते हुए उसे पुरुष विशेष कहा है। जितना संसार दिखलाई देता है वह परमात्मा का एक अंश (हिस्सा) तीन अंश (भाग) तो इस दृष्ट जगत् भी परे परमात्मा है अर्थात् जितने भी ब्रह्माण्ड के लोक लोकान्तरों को आज तक मनुष्य ने जान लिया है वह तो उस अनन्त ब्रह्म का एक भाग (२५%) है तीन भाग (७५%) इस ज्ञात ब्रह्माण्ड से वह परे है वह अनन्त है (३१-३)। उसी ब्रह्मने -सूर्य-चन्द्र-पृथिवी-वनस्पति-ओषधि-पशु-पक्षी तथा मनुष्यादि प्राणियों के शरीर की रचना की है (३१-६) उसी ने ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद और अथर्ववेद का ज्ञान दिया (३१-७) ब्रह्माण्ड में व्यास ब्रह्म का शिर-द्युलोक-मध्यभाग (उदर) अन्तरिक्ष है और पृथिवी उसके पैरों के समान है (३१-११)।

**वर्ण व्यवस्था :-** सारे संसार में व्यास ब्रह्म की चर्चा करने के साथ-साथ इस अध्याय में समाज राष्ट्र और संसार में विद्यमान पुरुषों (मनुष्यों) को भी चार भागों में विभक्त किया है। जैसे शरीर में शिर-भुजाएं-उदर (पेट) और पैर हैं तथा जो इन अंगों का कार्य उसी प्रकार समाज में जो लोग शिर (मस्तिष्क) का कार्य करते हैं, बुद्धिजीवी हैं पढ़ाने का कार्य करते हैं वे ब्राह्मण, भुजाओं के समान रक्षा का कार्य करनेवाले क्षत्रिय, जो आदान-प्रदान (लेने-देने) का कार्य (व्यापारिक कार्य) करते हैं वे वैश्य तथा पैरों के समान जो तीनो वर्णों की सेवा सहयोग करते हैं वे शूद्र कहलाते हैं (३१-११)। इस तरह यह बहुत सुन्दर उपमा इस मन्त्र में दी है। अन्धकार से परे उस महान् तेजस्वी ब्रह्म-परमात्मा को विना जाने मनुष्य मृत्यु के बन्धन से नहीं छूट सकता है। उत्पन्न न होने वाले परमात्मा का धैर्यशाली व्यक्ति ही दर्शन (साक्षात्कार) कर सकते हैं (३१-१९)। जिस परमात्मा ने सब के कल्याण के लिये सूर्यादि को बनाया है उस परमात्मा की उपासना मनुष्य को करनी चाहिये (३१-२०)। जैसे परमेश्वर न्याय और कृपा करता है वैसे ही मनुष्य को न्याय का आचरण करना चाहिये (३१-२२)।

**टिप्पणी :-**

१. *क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः* (योगदर्शन)
२. *ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् ---- पद्भ्यां शूद्रो अजायत* (यजु. ३१-११)
३. *वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् ---- विद्यतेऽयनाय* (यजु. ३१-१८)

# अध्याय - ३२

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में १६ मन्त्र हैं। इसमें परमेश्वर के स्वरूप तथा बुद्धि तथा धन की प्राप्ति व ब्राह्मण और क्षत्रिय के विषय में वर्णन है।

**परमात्मा का स्वरूप :-** परमात्मा के स्वरूप का विवेचन करते हुए प्रथम मन्त्र में लिखा है कि परमात्मा एक ही है। उसके विविध गुण हैं इसलिये भिन्न गुणों के कारण उसे अग्नि-वायु-चन्द्रमा-वरुण-ब्रह्म और प्रजापति आदि कहा जाता है (३२-१)। ये सब परमात्मा के गौण नाम हैं, मुख्य नाम उसका ओ३म् है। परमात्मा का कोई भौतिक आकार-प्रकार नहीं है इसलिये वह ऊपर-नीचे या बीच में हाथादि के द्वारा पकड़ा नहीं जा सकता है (३२-२)। इन्द्रियों से उसको नहीं ग्रहण किया जा सकता है। वह आंखों से नहीं देखा जा सकता क्योंकि विनाशशील पदार्थ को आंखों से देख सकते हैं जैसे हम मनुष्य पशु, पक्षी आदि प्राणियों के शरीर को देखते हैं, जो पैदा होते है और नष्ट हो जाते हैं। इन शरीरों के अन्दर रहनेवाले जीवात्मा (जो नित्य है उस) को भी आंखों से नहीं देखा जा सकता है। परमात्मा का कोई भौतिक शरीर-आकार-प्रकार नहीं होता है इसलिये उसकी कोई प्रतिमा-मूति आदि भी नहीं है (३२-३) यह सन्देश स्पष्ट रूप से वेद ने दिया है। वह परमेश्वर नित्य है इस लिये जगत् की उत्पत्ति से पहले ही था, आज भी है और आगे भी रहेगा। (३२-४) परमात्मा ने द्युलोक-अन्तरिक्ष और पृथिवी आदि को धारण कर रखा है। (३२-५) वह परमात्मा-हमारा माता-पिता-बन्धु और सखा है (३२-१०) उसी परमात्मा को प्राप्त करके मुक्त जीवात्मा मोक्ष के आनन्द का उपभोग करते हैं।

**मेधा बुद्धि तथा ब्राह्मण-क्षत्रिय :-** परमेश्वर के स्वरूप का विवेचन करने के पश्चात् परमात्मा से मेधा बुद्धि की प्रार्थना की गयी है। जो बुद्धि देवताओं तथा पितरों के पास अर्थात् जिससे कारण मनुष्य देवता-दिव्यगुणों से सम्पन्न होकर संसार को कुछ न कुछ देता है, उपकार करता है तथा जिस बुद्धि के कारण मनुष्य-पिता अर्थात् पालक या रक्षक हो जाता है ऐसी बुद्धि हमें प्रदान कीजिये यह प्रकाश स्वरूप परमेश्वर से निवेदन किया है। (३२-१४) परमेश्वर को वरुण-अग्नि-प्रजापति-इन्द्रादि गुणों से सम्बोधित करके मेधा बुद्धि की याचना की गयी है। (३२-१५) अध्याय के अन्तिम मन्त्र में ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों की महत्ता का वर्णन किया गया है कि (३२-१६) जहाँ पर ब्राह्मण और क्षत्रिय मिलकर कार्य करते हैं वह समाज और राष्ट्र निरन्तर प्रगति और उन्नति करता है अर्थात् शारीरिक बल और बुद्धिबल दोनों ही उन्नति के लिये आवश्यक और महत्वपूर्ण हैं।

**टिप्पणी :-**

१. *तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदुचन्द्रमाः* ------ (३२-१)
२. *न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः* ---- (३२-३)
३. *स नो बन्धु र्जनिता स विधाता धामानि वेद* ---- (३२-१०)

# अध्याय - ३३

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में ९७ मन्त्र हैं। इसमें अग्नि-प्राण-राजा-ऐश्वर्य विविध यान निर्माण, राजा-प्रजा वायु आदि विषयों का वर्णन है।

**राजा और ईश्वर :-** प्रथम मन्त्र (३३-१) में अग्नि-वायु आदि पदार्थों के विषय में जानकारी करके उनके उपयोग के विषय में लिखा है। बाल्य काल में बालक के निर्माण में धायी और माँ का महत्वपूर्ण योगदान होता है। (३३-५) विद्युत् के विषय में विशिष्ट ज्ञान इस विषयके विद्वान् प्राप्त करे (३३-६)। विद्युत् जल-अग्नि-वायु आदि में विद्यमान है (३३-८)। जो विद्वान् सूर्य के समान तेजस्वी और वायु के समान बलवान् तथा क्रियाशील होता है वह सब का कल्याण कर सकता है, सबको ठीक मार्ग दिखला सकता है (३३-१३)। राजा और विद्वानों को सदा धर्म का आचरण करना चाहिये (३३-१७)। धार्मिक राजा की विशेषताओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि जैसे सूर्य के उदय होने पर अन्धकार नष्ट होकर चारों ओर प्रकाश फैल जाता है वैसे ही धार्मिक राजा के कारण प्रजा का कष्ट-दुःख दर्द समाप्त हो जाता है और प्रजा सुख को प्राप्त करती है (३३-२०)। संसार का प्रत्येक पदार्थ परमात्मा का स्मरण कराता है सूर्य-चन्द्र-पृथिवी-नदी-नाले-समुद्र की गहराई पर्वतों की ऊंचाई, वृक्षों की हरियाली परमेश्वर की रचना शैली का स्मरण करा रहीं हैं (३३-३१)। वैज्ञानिकों को तीव्रगामी विमानों का निर्माण करना चाहिये (३३-३३)। जो परमात्मा जगत् की उत्पत्ति पालन तथा प्रलय करता है उसकी महिमा को जानकर मनुष्यों को उसकी उपासना करनी चाहिये (३३-३७)। सूर्य की आकर्षण शक्ति से पृथ्वी आदि सभी लोक लोकान्तर अपने स्थान पर तथा सूर्य के चारों ओर परिक्रमा कर रहे हैं (३३-४३)। ये परमेश्वर की रचना वैशिष्ट्य को प्रकट कर रहे हैं।

**निष्णात स्त्री और वैज्ञानिक :-** जिस प्रकार ओषधि से रोग दूर होकर स्वास्थ्य ठीक होता है उसी प्रकार स्त्री ऐसा भोजन बनावे जिससे परिवार के सभी सदस्यों का स्वास्थ्य ठीक रहे तथा स्त्री की वाणी में मधुरता हो जिससे सभी व्यक्ति स्वस्थ ही नहीं अपितु सुखी भी रहते हें (३३-५९) यह उपदेश वेद ने दिया है कि वाणी में मधुरता और पाक विद्या में निष्णात स्त्री को होना चाहिये। प्राण-व्यान-अपानादि का विशिष्ट ज्ञान मनुष्यों को होना चाहिये (३३-५७) अध्यापक-छात्रों को तथा छात्र अध्यापकों को सन्तुष्ट और प्रसन्न रखा करें। (३३-६२) जिस राज्य में योग्य राज्य कर्मचारी होते हैं उस राज्य की प्रजा सुख से रहती है (३३-६८) वैज्ञानिक लोग-ज्ञान विज्ञान-विद्युत् का प्रयोग तथा जलयान-वायुयानादि के निर्माण के द्वारा मनुष्यों को सुख प्रदान करें (३३-७५) राजा अपने राज्य की प्रजा की शिक्षा-स्वयंवर विवाह तथा डाकुओं से रक्षा किया करे। (३३-८४) मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार के विषय में लिखा है कि मनुष्य एक दूसरे को सुख देवे (३३-९४) जो मनुष्य धार्मिक न्यायाधीश और यशस्वी धनाढ्य व्यक्तियों से मित्रता रखते हैं वे सुखी रहते हैं। (३३-९५) परमेश्वर की महिमा को जानकर जो परोपकार करता है वह सुख प्राप्त करता है (३३-९७)।

**टिप्पणी :-**

*१. उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्।* (३३-३१)

# अध्याय - ३४

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में ५८ मन्त्र हैं। इसमें मन के विषय में विस्तार से वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त विद्वानों का संग, विद्या की इच्छा, बल और ऐश्वर्य की कामना, ओषधि के लक्षण, प्रातः जागरण इत्यादि विषयों का वर्णन है।

**मन की विशेषता :-** मन की विशेषताओं का वर्णन करते हुए प्रथम मन्त्र में ही उपदेश दिया है कि मन जागृत अवस्था में दूर-दूर तक चला जाता है तथा सोते हुए (स्वप्नावस्था में) भी वह कहीं का कहीं पहुँच जाता है। इन्द्रियों का भी यह इन्द्रिय है अर्थात् आंख-नाक-कानादि इन्द्रियों के साथ मन रहने पर ही ये इन्द्रियाँ अपने विषयों को ग्रहण करती हैं, मन एक है। ऐसे मन में अच्छे संकल्प विचार होने चाहियें[1] (३४-१)। मन में अच्छे विचार होने पर व्यक्ति अच्छे (शुभ) कर्म करता है तथा अशुभ (बुरा) सोचने पर अशुभ कर्म करने में प्रवृत्त हो जाता है। इसलिये मन में अच्छे विचार रखने चाहियें। मन के एकाग्र होने पर मनुष्य ऋग्वेद-यजुर्वेदादि का ज्ञान प्राप्त कर सकता है (३४-५)। मन को वश में रखने का प्रयास करना चाहिये (३४-६)। योग्य सारथि घोड़ों को वश में रखकर लक्ष्य तक रथ द्वारा पहुंच जाता है वैसे ही मन को वश में रखनेवाला अपने लक्ष्य परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। मन की विशेषताओं का वर्णन करने के पश्चात् उपदेश दिया है कि जो व्यक्ति ईश्वर के गुण-कर्म और स्वभाव को जानकर उसकी आज्ञा पालन करता है वह दीर्घायु होता है और सन्तान तथा धन से सम्पन्न रहता है (३४-१३)।

**प्रातः जागरण और सप्त ऋषि :-** मनुष्य को प्रातः काल उठना चाहिये इस विषय में अनेक वेदमन्त्रों (३४-३८) में उपदेश दिया है[2] कि "प्रातः काल-उठकर-अग्नि-इन्द्र-मित्र वरुण आदि नामों से परमात्मा का गुणगान करना चाहिये (३४-३४)। प्रातः काल उठने से मनुष्य सुख और ऐश्वर्य प्राप्त करता है यह संकेत देते हुए वेद में लिखा है कि विदुषी स्त्रियाँ कन्याओं को शिक्षा देकर उनके सुख ऐश्वर्य की वृद्धि किया करें (३४-४०) मनुष्य को सदा प्रशंसनीय कर्मों को करना चाहिये, दूसरों का हित और कल्याणकारक कार्य करने पर मनुष्य की प्रशंसा होती है। शिल्प विद्या के विशेषज्ञ विद्वानों (वैज्ञानिक इञ्जिनीयरादि) का सत्कार करना चाहिये जिससे वैज्ञानिक प्रगति राष्ट्र में हो सके (३४-४८) जो मनुष्य अपने समान दूसरों के सुख दुःखादि को समझकर कर्म करते हैं वे सुख-ऐश्वर्य और सफलता को प्राप्त करते हैं। (३४-५०) शरीर में पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ (आंख-नाक-कान-रसना-त्वचा) तथा मन और बुद्धि ये सात ऋषि विद्यमान हैं। जो प्रमादरहित होकर सदा शरीर की रक्षा कर रहे हैं। (३४-५५) अन्त में परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है कि हे प्रभो हमारी सन्तान शिक्षित कीजिये जिससे वह सत्कर्म करके सुख प्राप्त कर सके तथा जगत् का वातावरण सुखमय बना सकें। (३४-५८)

**टिप्पणी :-**

*१. यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैव तदु सुप्तस्य तथैवेति ---- अस्तु* (३४-१)
*२. प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे ----- रुद्रं हुवेम* (३४-३४)

# अध्याय - ३५

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में २२ मन्त्र हैं। इसमें जीवात्मा की गति-जन्म-मृत्यु आदि विषयों का वर्णन है।

**कर्म तथा अनित्य शरीर :-** जो मनुष्य सत्यवादी धर्मात्मा विद्वानों से द्वेष करता है वह परमात्मा की व्यवस्था के अनुसार दुःख प्राप्त करता है। जब जीवात्मा इस शरीर को छोड़ता है तो परमेश्वर उनके कर्मों के अनुसार उन्हें सुख दुःख रूपी भोगों को भोंगने के लिये विविध योनियों 'शरीरों' में भेजता है। (३५-१) यह शरीर नित्य अर्थात् सदा रहने वाला नहीं है श्व अर्थात् कल का भी इसका पता नहीं है। कल यह जीवन रहेगा या नहीं इसका किसी को भी पता (ज्ञान) नहीं है। जैसे तेज हवा से वृक्ष का पत्ता गिर जाता है वैसे किसी भी परिस्थिति (बाढ़-भूकम्प-दुर्घटना आदि) के कारण शरीर (जीवन) नष्ट हो सकता है इसलिये मानव शरीर की अनित्यता-अस्थिरता को ध्यान में रखकर मनुष्य को सदा सत्कर्म करने चाहिये (३५-४) जिससे वह परमात्मा को प्राप्त कर मोक्ष के आनन्द का भोग कर सके। मनुष्य सदा देवताओं के मार्ग देव यान-श्रेयमार्ग पर चलता हुआ मृत्यु को दूर करे अर्थात् जन्म और मृत्यु के बन्धन से दूर रहने का प्रयत्न करे। (३५-७) जो मनुष्य अधर्म को छोड़कर-धर्म और सत्य-न्याय का आचरण करते हैं उनके लिये सृष्टि में किसी प्रकार की कोई न्यूनता नहीं रहती है वह सदा सुख प्राप्त करता है (३५-९) जैसे बड़ी नौका (जलयान अर्थात् पानी में चलने वाले जहाज) से व्यक्ति समुद्र पार कर लेता है वैसे ही मनुष्य शुभकर्म करके पुरुषार्थ द्वारा दुःख सागर से पार हो जाता है। (३५-१०)

**मानव जीवन और मोक्ष :-** धर्मात्मा व्यक्ति के कर्तव्यों का संकेत करते हुए उपदेश दिया है कि जैसे ओषधि रोगों को दूर करती है और स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य को सुरक्षित रखती है वैसे ही धर्मात्मा व्यक्ति दूसरों का कल्याण करे, दुष्टों के प्रति भी मन में ईर्ष्या-द्वेष न रखे (३५-१२)। अनेक जन्म-जन्मान्तरों की तपस्या के फल स्वरूप श्रेष्ठ मानव जीवन (शरीर) प्राप्त हुआ है इसलिये इस जीवन में अवश्य ही परमात्मा को प्राप्त करने का संकल्प साधक लेता है (३५-१५)। मेरा जीवन शुद्ध पवित्र हो, मैं दुष्ट कर्मों तथा दुष्ट आचरण करनेवाले व्यक्तियों से सदा दूर रहूँ यह उपदेश दिया है (३५-१५)। राजा को सन्देश देते हुए लिखा है कि जैसे पिता पुत्र की रक्षा करता है वैसे ही राजा अपनी प्रजा की रक्षा करता रहे (३५-१७)। जो स्त्री पृथिवी के समान सहनशील और क्षमाक्षील होती है वह घर के सभी कार्यों में सफलता प्राप्त करती है। वह लोगों के दोषों को दूर करने में सफल होती है और सभी उसकी प्रशंसा करते हैं (३५-२१)। अध्याय के अन्तिम मन्त्र में मनुष्य जीवन की महत्ता का ध्यान दिलाते हुए कहा है कि मानव शरीर धारण करके मनुष्य को शुभ कर्म-धर्म का आचरण अच्छा स्वभाव और योगाभ्यास करके मोक्ष सुख के लिये प्रयत्न करना चाहिये जिससे मनुष्य जीवन सफल हो जाय (३५-२२)।

# अध्याय - ३६

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में २४ मन्त्र हैं। इसमें परमेश्वर से वाणी-मनादि के लिये प्रार्थना, शान्ति की प्राप्ति तथा आपस में मित्रता, धर्म तथा पूर्ण आयु, स्वस्थ जीवन आदि विषयों का वर्णन हैं।

**शान्तिदायक जीवन :-** हमारा मन-वाणी-इन्द्रियां तथा प्राणादि सभी स्वस्थ एवं कार्य करने में समर्थ रहें (३६-१) यह प्रार्थना प्रथम मन्त्र में की गयी । परमात्मा हमारा रक्षक दु:खों को दूर करने वाला, सुखदाता है। वह सृष्टि (संसार) का निर्माता है, सर्वश्रेष्ठ और तेजस्वरूप है ऐसे देव का हम ध्यान करते हैं उसके गुणों को जीवन में धारण करते हैं तथा उससे प्रार्थना करते हैं कि हमारी बुद्धि को सत्कर्मों को करने के लिये प्रेरित करे[1] (३६-३) अर्थात् परमात्मा से हमें सद् बुद्धि की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करनी चाहिये, सांसारिक पदार्थ तो परमेश्वर ने दे रखे हैं तथा जल-वायु आदि प्राकृतिक पदार्थ हर पल और हर क्षण देता ही रहता है उसके देने में कोई न्यूनता (कमी) नहीं है। मित्र-वरुण (जल) अर्यमा-(न्यायाधीश-व्यापारी) सभी सुख कारक हों, शान्ति देने वाले हों (३६-९)। वायु-सूर्य हमारे लिये सुखकारक हों, बादल गर्जना करता हुआ वर्षा करे, अर्थात् समय पर वर्षा हो, वर्षा भी हमारे लिये सुखदायक हों[2] (३६-१०) अर्थात् अतिवृष्टि और अनावृष्टि के कष्ट से हम सदा बचे रहें यह प्रार्थना की गयी है। दिन और रात हमारे लिये शान्तिदायक-सुखकारक हों (३६-११)

**सभी पदार्थ शान्ति दायक :-** सर्वव्यापक तथा सब के प्रकाशक परमात्मा से प्रार्थना की गयी है हमें लौकिक और पारलौकिक (मोक्ष) सुख की प्राप्ति हो (३६-२)। हम ऐसे शुभ कर्म करें जिससे यह जीवन भी ठीक हो तथा इसके बाद मोक्ष प्राप्त कर सकें परमात्मा जैसे शान्ति प्रदान करता है वैसे ही पानी से भी शीतलता-शान्ति प्राप्त होती है पानी हमारे लिये शान्ति हैं (सुख) देने वाला हो, जैसे पतिव्रता स्त्री पति को सुख देती है वैसे पानी से सुख मिले[3] (३६-१४) यह परमात्मा से प्रार्थना की गयी है। पतिव्रता स्त्री पति को सुख देवे, माता सन्तान के लिये सुखदायक हो (३६-१५)। स्त्री-पुरुष (पति-पत्नी) के परस्पर का व्यवहार सुख एवं शान्तिदायक हो (३६-१६)। यह सन्देश वेद मन्त्र दे रहा है। द्युलोक-अन्तरिक्ष-पृथिवी-जल-वनस्पतियां-विद्वान् सभी शान्ति (सुख) देने वाले हों तथा वह शान्ति हमारे अन्दर भी हो[4] (३६-१७)। हे परमेश्वर आप हमारे, द्रष्टा हैं शुभकर्म करने वालों के हितैषी हैं सौ शरदऋतु (सौ वर्ष) पर्यन्त हम देखते, सुनते और बोलते रहें, अदीन बनकर रहें अर्थात् पराधीनता हमारे जीवन में जीवित रहते हुए न आवे (३६-२४)। हम चलते फिरते संसार से चल दें, दूसरों के आश्रित हमें न होना पड़े और सौ वर्ष से भी अधिक समय तक जीवित रहें यह प्रार्थना की गयी है।

**टिप्पणी :-**

*१. भू र्भुवः स्वः। तत्सवितु र्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्* (३६-३)
*२. शन्नो वातः पवतां शन्नस्तपतु सूर्यः .....पर्जन्यो अभिवर्षतु।* (३६-१०)
*३. शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ..... भिस्त्रवन्तु नः* (३६-१२)
*४. द्यौ : शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिःपृथिवी शान्तिरापः .....*(३६-१७)

# अध्याय - ३७

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में २१ मन्त्र हैं। इसमें ईश्वर-योगी-सूर्य-पृथिवी-युक्त आहार विहार इत्यादि विषयों का वर्णन है।

**शिक्षित स्त्री पुरुष :-** उत्तम विद्वानों के साथ में रहकर शिक्षा ग्रहण करके जीवन को उत्तम (श्रेष्ठ) बनाना चाहिये (३७-१) जैसे योगी जन सर्वव्यापक परमात्मा का ध्यान करते हैं उसी प्रकार मनुष्यों को परमात्मा की स्तुति करनी चाहिये (३७-३) जैसे सूर्य और पृथिवी सदा सभी प्राणियों का कल्याण कर रहे हैं वैसे ही मनुष्यों को दूसरों के कल्याण के लिये प्रयत्न करना चाहिये। स्त्री शिक्षा के महत्त्व का उल्लेख करते हुए वेद में लिखा है कि विदुषी स्त्रियों के कारण ही उत्तम शिक्षा का प्रचार प्रसार होता है। (३७-४) इसलिये स्त्रियों की शिक्षा के लिये मनुष्यों को सदा प्रयत्न करना चाहिये। जो शिक्षक सभी को शिक्षा देते हैं, सद्गुणों से सम्पन्न करते हैं वे उत्तम शिक्षक कहलाते हैं (३७-५) धर्म की महत्ता का वर्णन करते हुए वेद में लिखा है कि जो मनुष्य धर्मयुक्त कार्यों को करते हैं, धर्म का आचरण करते हैं, सभी को उनका सम्मान करना चाहिये (३७-६) जो स्त्री-पुरुष विद्वान् हैं, शिक्षित हैं वे दूसरे मनुष्यों को भी शिक्षित बनाने के लिये प्रयत्न करें (३७-७) यह सन्देश दिया है कि विद्वानों को सदा विद्या और शिक्षा के लिये प्रयत्न शील रहना चाहिये। जो मनुष्य दूसरों का सत्कार करते हैं वे स्वयं भी सत्कार प्राप्त करने के अधिकारी हो जाते हैं (३७-८)

**यज्ञ और ईश्वर :-** यज्ञ के लिये मन्त्र (३७-१०) में मख शब्द का प्रयोग हुआ है अर्थात् यज्ञ में कोई 'त्रुटि-न्यूनता या कमी नहीं होती है, यज्ञ के द्वारा सभी प्राणियों को सुख मिलता है, सबका कल्याण होता है। यज्ञ करने वाला मनुष्य सुख-ऐश्वर्य राज्यादि को प्राप्त करने में सफल होता है। सज्जन पुरुष श्रेष्ठ व्यक्तियों को सदा सुख देते रहते हैं (३७-११) परमात्मा सभी प्राणियों को उत्पन्न करने वाला तथा सब का रक्षक है ऐसे परमात्मा की उपासना मनुष्यों को सदा करनी चाहिये। (३७-१४) अग्नि का उत्पादक सूर्य है तथा सूर्य को बनाने वाला परमात्मा है ऐसे परमात्मा को जानकर मनुष्य लौकिक और पारलौकिक सुखों को प्राप्त करता है। (३७-१५) विद्वानों से प्रार्थना की गयी है कि सब के प्रकाशक परमात्मा के विषय में हमें ज्ञान दो (३७-१६) जो योगी सबको प्रकाशित करने वाले सर्वान्तयामी परमात्मा का ध्यान करते हैं वे धर्माचरण करते हुए जीवन में शुद्ध पवित्र रहते हैं। (३७-१७) परमात्मा हमारा मित्र-बन्धु तथा पिता के समान रक्षक है ऐसे परमात्मा की उपासना करने से मनुष्य सदा सुखी रहता है (३७-२०)। मनुष्य को दिन में शयन (सोना) नहीं करना चाहिये। रात्री में सोना, दिन में कार्य करना, समय पर सोना, समय पर उठना, समय पर भोजन करना, अर्थात् युक्त आहार-विहार करने वाला, ईश्वर की उपासना करने वाला तथा व्यक्ति सदा सुखी रहता है। (३७-२१)

# अध्याय -३८

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में २८ मन्त्र हैं। इसमें शुभ गुणों का ग्रहण यज्ञ से जगत् के पदार्थों की शुद्धि सुख प्राप्ति और धर्म का अनुष्ठान इत्यादि विषयों का वर्णन है।

**गृहस्थ स्त्री-पुरुष :-** जिन स्त्री-पुरुषों ने ब्रह्मचर्य (सदाचार) का पालन किया तथा जो धर्म का आचरण करते हैं वे विवाह करने के योग्य (गृहस्थ में प्रवेश करने के अधिकारी) हैं (३८-२) स्त्री सदा पति को सुख देती रहे यह संकेत वेद (३८-३) ने दिया। गृहस्थ स्त्री-पुरुष सदाचारी और धार्मिक हों तो गृहस्थ सुखदायक होता है। गृहस्थाश्रम में स्त्री का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। क्योंकि स्त्री के न होने पर बालकों का भरण-पोषण-पालन-और रक्षा नहीं हो सकती है। जिन स्त्री-पुरुषों का परस्पर गुण-कर्म स्वभाव मिलता हो उनका आपस में विवाह होना चाहिये जिससे दोनों एक दूसरे को सुखी रख सकें (३८-५) गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि गृहस्थ स्त्री-पुरुषों को सृष्टि विषयक ज्ञान विज्ञान की प्रगति-उन्नति के लिये विशेष प्रयत्न करना चाहिये (३८-७) जिससे वैज्ञानिक उन्नति का लाभ सामान्य जन प्राप्त कर सके। जो स्त्री पुरुष वेदों के अनुसार कर्म करते हैं वे बहुत सुख प्राप्त करते हैं यह सन्देश दिया गया है (३८-११)गृहस्थ स्त्री-पुरुषों को सत्य ज्ञान विज्ञान के लिये सदा पुरुषार्थ करना चाहिये, यह सन्देश दिया है (३८-१५)। जो मनुष्य जगत् की उन्नति के लिये प्रयत्न करते हैं वे प्रशंसा के पात्र होते हैं। (३८-१७) अर्थात् सदाचारी-धर्मात्मा और पुरुषार्थी व्यक्ति प्रशंसनीय होते हैं, उनकी प्रशंसा करनी चाहिये।

**सुख और मुक्ति :-** पथ्य और ओषधि के सेवन से मनुष्य के रोग नष्ट हो जाते हैं और रोग के कारण होने वाला दुःख भी दूर हो जाता है। (३८-२३) इसलिये जो मनुष्य दूसरों के रोग तथा दुःखों को दूर करते हैं वे धन्यवाद के पात्र हैं। उपासना के द्वारा योगी परमात्मा का साक्षात्कार करने में सफल हो जाता है (३८-२५) यह सन्देश वेद ने दिया है। विद्वानों को सचेत करते हुए वेद में उपदेश दिया है कि विद्वानों को भौतिक पदार्थों से लाभ ले ते हुए मोक्ष सुख के लिये सदा प्रयत्न शील रहना चाहिये (३८-२६) मनुष्यों को सुख कब प्राप्त होता है इस विषय में लिखा है कि उत्तम बल बुद्धि, शुभकर्म और धर्म से संचित किया हुआ धन, तथा जितेन्द्रयता के कारण मनुष्य सुख प्राप्त करता है। (३८-२७) इसलिये मनुष्यों को सदा शुभ गुणों को धारण करना चाहिये जैसे अपने सुख के लिये मनुष्य प्रयत्न करता है वैसे ही दूसरों के सुख के लिये भी प्रयत्न किया करे, जिससे मोक्ष सुख प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर सके। (३८-२८)

# अध्याय :- ३९

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में १३ मन्त्र हैं। इसमें अन्त्येष्टि संस्कार अर्थात् मृत्यु के पश्चात् मृतक शरीर (शव) के दाहकर्म विषयक मन्त्र हैं।

**अन्त्येष्टि संस्कार (कर्म) :-** इस अध्याय में अन्तिम संस्कार (दाह क्रिया) से सम्बधित मंन्त्र हैं। जिसे नरमेध या पुरुषमेध भी कहते हैं। शव को अग्नि में जलाकर उसे पंचभूतों में विलीन कर देना चाहिये। जैसे मिट्टी से घड़ा बनता हैं और घड़ा फूटकर वापस मिट्टी में मिल जाता है इसी प्रकार मानवशरीर पंच भूतों से बनता है। मृत्यु होने पर उसे शीघ्र पंचभूतों में विलीन करने का माध्यम अग्नि है, अग्नि में शव को जलाने से वायु दुर्गन्धित होती है। इसलिये दुर्गन्ध को दूर करने के लिये शरीर के वजन के समान घी तथा सुगंन्धित सामग्री, केसर-कस्तुरी आदि डालना चाहिये जिससे वायु मण्डल मुर्दे (शव) के जलाने से दूषित न हो। इसलिये अन्त्येष्टि संस्कार का भी महत्व है। इस अध्याय में प्रयुक्त मन्त्र शरीर की नश्वरता और जीवात्मा की अमरता की ओर संकेत दे रहे हैं।

**जीवात्मा की गति :-** संस्कार की उपयोगिता के विषय में लिखा है कि जो लोग सुगन्धियुक्त घृतादि सामग्री से मृतक के शरीर (मुर्दे या शव) को जलाते हैं वे पुण्य के भागी होते हैं। (३९-३) जीवात्मा जब इस शरीर को छोड़ता है तब यह वायु-जल अन्नादि पदार्थों में होता हुआ ईश्वर की व्यवस्था से जैसे उसके कर्म होते हैं उनके अनुसार अगले जन्म (शरीर) को प्राप्त करता है। (३९-५) वायु-अग्नि - जल-अन्नादि में होता हुआ पिता के शरीर में और तत्पश्चात् मां के शरीर प्रविष्ट होता है। जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार शरीर धारण करके पुण्य कर्मों का फल सुख तथा पाप कर्मों का फल दुःख के रूप में भोगता है। (३९-६)

**सुख प्राप्ति :-** जो मनुष्य शरीर के सब अंगों से धर्म का आचरण करते हैं, वे वर्तमान जीवन में तथा आगे भविष्य में भी अधिक सुखों को प्राप्त करते हैं (३९-८)। मृत-शरीर (मुर्दा-शव) जब तक पूरी तरह भस्म न हो जाय तब तक शव पर घी आदि सुगन्धित पदार्थ डालते रहना चाहिये। (३९-१०) इस प्रकार पूरी तरह से अन्त्येष्टि संस्कार करना चाहिये, मनुष्यों को सदा पुरुषार्थ करना चाहिये जिससे अगला जन्म भी उसके लिये सुखदायक हो जाय (३९-११) पापादि दुष्कर्मों से बचने के लिये मनुष्य को सदा सत्कर्मों को करना चाहिये जिस से दुःखो से निवृति औंर सुखों की प्राप्ति होती है (३९-१२) मनुष्य को सदा ईश्वर की न्याय व्यवस्था को ध्यान में रखकर पापाचरण से दूर रहना चाहिये, ब्रह्महत्यादि दोषों से बचाकर रहे तथा शुभकर्म करना चाहीये इन विचारों को ध्यान में रखकर मृतक शरीर को विधिं पूर्वक जलाकर सुखों को प्राप्त करना चाहिये (३९-१३)

# अध्याय -४०

**विषय विवेचन :-** इस अध्याय में १७ मन्त्र हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र में इस अध्याय का बहुत अधिक महत्त्व है। कुछ परिवर्तन के साथ यह अध्याय ईशोपनिषद् या ईशावास्योपानिषद् के नाम से प्रसिद्ध है। इन मन्त्रों में विद्यमान ज्ञान भण्डार से भारतीय और पाश्चात्त्य सभी विद्वान् बहुत प्रभावित हुए हैं। इसमें परमात्मा-जीवात्मा-कर्म करने की प्रेरणा, विद्या, अविद्या,सम्भूति-असम्भूति, जन्म-मृत्यु-संसार की अनित्यता, परमात्मा के ओ३म् नाम का स्मरण इत्यादि विषयों की गम्भीर चर्चा की गयी है।

**ईश्वर और जीवात्मा :-** प्रथम मन्त्र में परमात्मा की सर्वव्यापकता का वर्णन करते हुए लिखा है कि ईश्वर सब जगह विद्यमान हैं। यह संसार अनित्य है सदा रहने वाला नहीं है इसलिये मनुष्य को लोभ लालच न करके सांसारिक पदार्थों का त्याग पूर्वक भोग करना चाहिये। अर्थात् वृद्धावस्था में भूख कम हो जाय तो भोजन भी मनुष्य को स्वयं ही कम कर देना चाहिये। कोई पदार्थ हमसे छीने, उसकी बजाय हमें स्वयं छोड़ देना चाहिये। स्वयं छोड़ने (त्याग करने) में जो सुख और आनन्द मिलता है वहं सुख छीनने पर नहीं प्राप्त होता है। यह सन्देश वेद मन्त्र दे रहा है। मनुष्य को कर्म करते हुए ही जीने की इच्छा करनी चाहिये। आलसी-निकम्मा नहीं रहना चाहिये (४०-२) निरन्तर पुरुषार्थ करने की प्रेरणा इस मन्त्र द्वारा दी गयी है। जो लोग आत्म हत्य करते हैं, आत्म हनन (अन्तरात्मा की आवाज के विरुद्ध कार्य) करते हैं वे लोग घोर अन्धकार को प्राप्त करते हैं (४०-३) परमात्मा के विषय में पुन: उपदेश दिया है कि वह एक है, स्थिर है, वह इन्द्रियों से प्राप्त नहीं हो सकता है (४०-४) परमात्मा दूर भी है और समीप भी है सभी के अन्दर और बाहर सब जगह है। (४०-५) जो व्यक्ति परमात्मा को सबमें और सब को परमात्मा में देखता है उसको कोई मोह-शोकादि नहीं होता है। (४०-७) परमात्मा सर्वत्र विद्यमान् है, उसका शरीर नहीं है, वह नस-नाड़ी आदि से रहित शुद्ध और पवित्र है। वह स्वयंम्भू सर्वज्ञ और सर्वोपरि है। सभी जीवात्माओं के शुभाशुभ कर्मों को जानता है तथा उन्हें यथार्थ फल देता है (४०-८) न तो किसी को कम, न किसी को अधिक फल देता है। उसकी न्याय व्यवस्था यथार्थ है।

**भौतिक और आध्यात्मिक :-** जो मनुष्य परमात्मा को छोड़कर प्रकृति या प्रकृति से बने हुए महत्तत्व अहंकारादि जड़ पदार्थों के विषय में निरन्तर लगे हुए रहते हैं वे घोर अन्धकार को प्राप्त करते हैं (४०-९) भौतिक जड़ जगत् में ही समय व्यतीत न करके मनुष्य को ईश्वर की उपासना में लगना चाहिये। इसी प्रकार जो लोग भौतिक (सांसारिक) विषयों का ही ज्ञान प्राप्त करते रहते हैं वे भी अन्धकार

को प्राप्त करते हैं अर्थात् जन्म और मृत्यु के बन्धन से छूट नहीं सकते हैं। जो केवल अध्यात्म की ओर लगे हुए हैं तथा शरीर और संसार की उपेक्षा करते हैं, शरीर की ओर ध्यान न देने वाला व्यक्ति रोगी हो जाता है और रोगी व्यक्ति ईश्वर की उपासना भी नहीं कर सकता वह उपासना के आनन्द से ही नहीं अपितु शारीरिक (भौतिक) सुखों से भी वञ्चित हो जाता है अत:वह और अधिक अन्धकार को प्राप्त करता है (४०-१२) इसलिये भौतिक और आध्यात्मिक (शरीर और आत्मा) दोनों की उन्नति के लिये प्रयत्न करने वाला व्यक्ति मोक्ष (अमृत) को प्राप्त करता है। (४०-१४) यह उपदेश वेद ने दिया है।

**आत्मा-परमात्मा :-** आत्मा नित्य है और शरीर अनित्य अर्थात् अन्त में भस्म होने वाला (पंचभूतों में विलीन होने वाला) है। इस लिये है कर्मशील जीवात्मा तू अपने किये हुए कर्मों के विषय में विचार कर और परमात्मा के नाम ओ३म् का स्मरण कर (४०-१५) परमेश्वर से प्रार्थना की है कि हे प्रभो ! हमको सुपथ पर चलने की प्रेरणा दो,आप हमारे ज्ञान और कर्मों को जानते हैं, पाप से हम को दूर कीजिये, हम आपको बारम्बार प्रणाम करते हैं (४०-१६) अन्तिम मन्त्र में संसार की यथार्थता का उपेदेश देते हुए लिखा है कि संसार की चमक-दमक (भौतिक आकर्षण और प्रलोभन) ने सत्य का मुख ढक रखा। अर्थात् यथार्थता को छिपा रखा है। जब मनुष्य सत्य-न्याय-अध्यात्म या ईश्वर की ओर कदम बढ़ाता है तो भौतिक विषयों का भोग या सुख सुविधाओं का आकर्षण बाधक बनकर कर उपस्थित हो जाता है। भौतिक सुख सुविधाओं तथा सांसारिक आकर्षण को त्यागकर सर्वव्यापक परमात्मा को देखने (अनुभव या साक्षात्कार करने) का हम प्रयत्न करें। वह प्रभु आकाश के समान सर्वव्यापक ब्रह्म है उससे बड़ा कोई नहीं हैं उसका नाम ओ३म् है (४०-१७) यह सन्देश वेद के अन्तिम मन्त्र में दिया है।

**टिप्पणी :-**

१. *ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च .....स्विद्धनम्।* (४०-१)
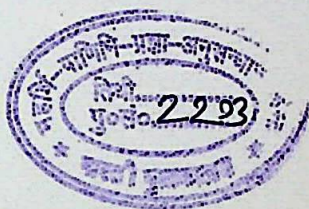
# ॥ वेद महिमा ॥

1) Rugveda is the oldest book in the libarary of the world.

संसार के पुस्तकालय में ऋग्वेद सबसे पुराना ग्रन्थ है। (प्रो. मैक्समूलर)

२) परमात्मा ने हिन्दुस्तान में अपने पैगम्बरों (ऋषियों) के हृदयों में चारों वेदों का प्रकाश किया।

३) हे हिन्दुस्तान की धन्यभूमि ! तू आदरणीय है क्योंकि तुझमें ईश्वर ने समस्त ज्ञान (वेद) का प्रकाश किया है।

(अस्माई मलेकुसशरा अरबी लेखक और राजकवि)